इंसान

और

उसकी समस्याएँ

सैयद जलालुद्दीन उमरी

अनुवादक

मुनाज़िर हक़

विषय - सूची

शीर्षक	पृष्ठ
कुछ लेखक के बारे में	5
दो शब्द	7
समस्याएं क्या हैं ?	7
—दृष्टिकोण	7
—सामाजिक सम्बन्ध	10
—क़ानून	13
जीवन की समस्याओं का इस्लामी समाधान	18
—आस्थाएं एवं दृष्टिकोण	18
—शिर्क	18
—भौतिकता	22
—वास्तविकता का ज्ञान	24
—इंसान की परीक्षा	27
—पुरस्कार एवं दण्ड	29
—रिसालत	30
—आख़िरी रसूल	33
मानव-सम्बन्ध	38
—मतभेद और विवाद	38
—जीवन के ग़लत उद्देश्य	38
—उचित दृष्टिकोण	41
—अत्याचार एवं अन्याय का अन्त	45
—सहानुभूति और सहयोग की शिक्षा	47
—सहानुभूति-सहयोग और अल्लाह की बन्दगी में सम्बन्ध	48
—ख़ुदा की नेमतों का एहसास	50
—सहानुभूति-सहयोग का प्रारम्भ	53
—सहानुभूति-सहयोग की व्यापकता	54

शीर्षक	पृष्ठ

ख़ुदा का क़ानून	**56**
—क़ानून बनाने वाला ख़ुदा है	**56**
—इस्लामी क़ानून की सार्वभौमिकता	**56**
—इंसानी क़ानूनों की ख़राबी	**57**
—क़ानून के मानने वालों और न मानने वालों के प्रति इस्लाम की नीति	**60**
—क़ानून की सार्वभौमिकता पर आपत्ति	**61**
—क्या इंसानी क़ानून अपने उद्देश्य में सफल है ?	**64**
—इस्लामी क़ानून की सफलता के कारण	**65**
—कुरआन के कुछ क़ानून	**68**
इस्लाम एक शाश्वत जीवन-व्यवस्था	**71**
—इस्लाम का अतीत एवं भविष्य	**71**
—घटनाएं इतिहास के अधीन नहीं होतीं	**71**
—इन्सान का स्वभाव अटल है	**75**
—सामयिक दृष्टिकोण	**75**
—इस्लाम एक चिरस्थाई सत्य	**78**
—दो बुनियादी प्रश्न	**78**
—पहला प्रश्न	**79**
—दूसरा प्रश्न	**80**
—इबादत के उसूल	**81**
—मामलों में इज्तिहाद	**82**
बग़ावत क्यों ?	**84**
—पहला कारण	**84**
—दूसरा कारण	**85**
—तीसरा कारण	**87**
—चौथा कारण	**90**
—पांचवा कारण	**91**

कुछ लेखक के बारे में

मौलाना सय्यद जलालुद्दीन उमरी (जन्मः 1935) भारत के एक मुस्लिम विद्वान, मनीषी और प्रतिष्ठित एवं विश्वसनीय लेखक के रूप में जाने जाते हैं। सम्बन्धित विषय के तमाम पहलुओं पर समग्र दृष्टि तथा भाषा एवं शैली का रख रखाव उनकी रचनाओं की मुख्य विशेषता है।

मौलाना जलालुद्दीन का जन्म अपनी पैत्रिक जन्मभूमि 'नार्थ आरकाट' (तमिलनाडु) में हुआ। आरंभिक शिक्षा घर ही पर प्राप्त की। उच्च शिक्षा के लिए प्रसिद्ध इस्लामी शैक्षणिक संस्थान जामिआ दारुस्सलाम-उमराबाद में प्रवेश लिया। वहां से 'फ़ज़ीलत' की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात मद्रास युनिवर्सिटी से 'मुंशी फ़ाज़िल' का इम्तहान पास किया। तत्पश्चात अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी से 'बी.ए.' की उपाधि प्राप्त की।

मौलाना इस समय निम्न पदों पर कार्यरत हैं :

- नायब अमीर (उपाध्यक्ष प्रशिक्षण विभाग) जमाअत इस्लामी हिंद
- सदस्य, केन्द्रीय सलाहकार परिषद जमाअत इस्लामी हिंद
- सेक्रेट्री, इदारा तहक़ीक़ व तस्नीफ़े इस्लामी अलीगढ़
- सम्पादक त्रैमासिक पत्रिका 'तहक़ीक़ाते-इस्लामी' अलीगढ़
- संस्थापक सदस्य, आल इंडिया मुस्लिम पर्सनल ला बोर्ड (AIMPLB)
- सदस्य, आल इंडिया मुस्लिम मजलिसे मुशावरत
- सदस्य, इशाअते-इस्लाम ट्रस्ट दिल्ली
- सदस्य कार्यसमिति एवं मजलिसे तालीमी जामिअतुल फ़लाह बिलरियागंज
- मैनेजर, सिराजुल-उलूम निसवां (महिला) कालिज, अलीगढ़

उपरोक्त पदों का दायित्व निभाने के साथ इस्लामी साहित्य के निर्माण में मौलाना का महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट योगदान है और अब तक उनकी छोटी-बड़ी डेढ़ दर्ज से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें से कुछ विशेष पुस्तकें ये हैं :

मारूफ़-मुनकर, इस्लाम की दावत, इंसानों की ख़िदमत, इंसान और उसके मसाएल, ख़ुदा और रसूल का तसव्वुर, औरत-इस्लामी मआशरे में, मुस्लिम ख़वातीन की दावती ज़िम्मेदारियां, सेहत और मर्ज़, इस्लामी तालीमात।

—प्रकाशक

दो शब्द

इंसान के अध्ययन के दो तरीक़े हैं। एक तरीक़ा दर्शन का है, जो वास्तविकता से सीधे बहस करता है। इंसान की रचना, उसके उद्देश्य और इस विस्तृत ब्रह्माण्ड से उसके सम्बन्ध के बारे में दर्शन-शास्त्र की शैली विशुद्ध बौद्धिक होती है। बहस का यह तरीक़ा कठिन भी है और यह लाभप्रद भी उन्हीं लोगों के लिए होता है, जिनके ज्ञान का स्तर उच्च हो। परन्तु जिन लोगों का बौद्धिक स्तर अधिक ऊंचा न हो वे इससे लाभ नहीं उठा सकते, उनके लिए बहस का दूसरा तरीक़ा अधिक उचित होता है। वह यह कि इंसान की वास्तविकता से उसकी समस्याओं की रोशनी में बहस की जाए। आम लोग सीधे तौर पर हक़ीक़त को नहीं समझ सकते वे हक़ीक़त को रोज़मर्रा की समस्याओं एवं परिस्थितियों में रख कर देखने के अभ्यस्त होते हैं। जीवन के ऊंच-नीच से गुज़रते हुए इंसान को जिन समस्याओं से पाला पड़ता है वही उसकी वास्तविक समस्याएं हैं। इन समस्याओं पर व्यावहारिक संवाद वैचारिक संवाद से अधिक दिलचस्प भी होता है और अधिक लाभप्रद भी, क्योंकि इसमें उन प्रश्नों के उत्तर होते हैं जो सुबह-शाम इंसान के मस्तिष्क में पैदा होते हैं और जिनके हल के लिए इंसान स्वभावतः बेचैन रहता है।

इस किताब में बहस का यही दूसरा तरीक़ा अपनाया गया है। पहले समस्याओं का सैद्धांतिक वर्गीकरण है और फिर इस वर्गीकरण के अन्तर्गत इस्लामी शिक्षाओं को पेश किया गया है। हमारी दृष्टि में इस्लाम इंसान की छोटी-बड़ी सम्पूर्ण समस्याओं का सही और सफल समाधान है। वह अपने अन्दर ऐसी अमिट सच्चाइयां रखता है, जिससे हर समय और हर स्थान की समस्याएं हल हो सकती हैं। जीवन का ऐसा कोई प्रश्न नहीं है, जिसका जवाब

इस्लाम न देता हो। इंसान ने अपनी समस्याओं के समाधान के लिए अब त जितने दर्शन खोजे वे या तो बुरी तरह असफल हो चुके हैं या असफलता व ओर बढ़ रहे हैं। उनके मार्गदर्शन से इंसान जब तक छुटकारा नहीं पाता अप आपको तबाही से नहीं बचा सकता।

किताब में शास्त्रीय तर्कों एवं परिभाषिक शब्दों के प्रयोग से बचने व भरसक प्रयास किया गया है। भाषा भी सरल एवं आसान रखी गई है। अन्त उन कारणों की संक्षिप्त समीक्षा की गई है जो इस्लाम की ओर बढ़ने में रुकाव बन रहे हैं। जो अल्लाह के बन्दे इन पृष्ठों में अपनी समस्याओं का इस्ला समाधान तलाश करेंगे, इन्शा अल्लाह उन्हें मायूसी नहीं होगी और यही इ किताब के लिखने का उद्देश्य है।

जलालुद्दीन

समस्याएं क्या हैं ?

जीवन की समस्याएं बहुत हैं। आजीविका की समस्या, कपड़े की समस्या, शिक्षा की समस्या, आवास की समस्या, समाज एवं संस्कृति की समस्या, युद्ध एवं संधि की समस्या, जान-माल और इज़्ज़त व आबरू की सुरक्षा की समस्या ; कहने का तात्पर्य यह कि एक-दो नहीं अनगिनत समस्याओं ने इंसान को घेर रखा है। इन समस्याओं का सम्बन्ध चाहे किसी एक व्यक्ति से हो या परिवार, समाज और राज्य से, हम इन सबको तीन शीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त कर सकते हैं : दृष्टिकोण, सामाजिक सम्बन्ध और क़ानून—ज़िन्दगी की ऐसी कोई समस्या नहीं है जो किसी न किसी रूप में इन शीर्षकों के अन्तर्गत न आती हो।

इंसान की जितनी समस्याएं हैं, वे सब इस मूल से उत्पन्न होती हैं कि वह अपने बारे में क्या सोचता है और अपने चारों ओर फैली हुई इस विस्तृत दुनिया के सम्बन्ध में क्या दृष्टिकोण अपनाता है ? इससे इस ब्रह्माण्ड में उसकी हैसियत सुनिश्चित होती है, जिससे यह ज्ञात होता है कि उसकी सामाजिक व्यस्तता का रुख़ क्या होना चाहिए ? परन्तु व्यावहारिक जीवन में उसके सामने सबसे पहले दो प्रश्न आते हैं। एक यह कि जीवन की विभिन्न समस्याओं में वह अपने जैसे दूसरे इंसानों के साथ किन बुनियादों पर सम्बन्ध बनाता है ? दूसरे यह कि वह किस क़ानून का पालन करता है ? अर्थात् वह कौन-सी सत्ता है, जिसका वह विरोध नहीं कर सकता और जिसका फ़ैसला उसके लिए अन्तिम फ़ैसले की हैसियत रखता है ?

दृष्टिकोण

इंसान पैदा होते ही अपने-आप को ऐसे वातावरण में पाता है जहां रात

आती है और दिन जाता है, आसमान पर तारे झिलमिलाते हैं और डूब जाते हैं, ज़मीन लहलहाती और मुरझा जाती है, नदी-नाले और सरिताएं बहने लगती हैं और सूख जाती हैं, पेड़ों और खेतों में हरियाली आती और चली जाती है। ये परिवर्तन यूँ ही नहीं गुज़र जाते, बल्कि इंसान पर अपना प्रभाव डालते हैं। दिन निकलता है तो वह अपनी आजीविका के लिए संघर्ष करना शुरू करता है, रात उसके विश्राम का ज़रिया बनती है, ज़मीन की हरियाली से वह लाभ उठाता है और सूखा पड़ जाने से उसे हानि होती है। हवा और पानी उसे जीवन प्रदान करते हैं, परन्तु यही हवा और पानी आंधीं और बाढ़ बन कर उससे जीवन छीन भी लेते हैं। ज़मीन की गोद में वह शरण लेता है परन्तु यही ज़मीन कभी उसे अपने ऊपर सहन करने से इनकार भी कर देती है। इस प्रकार इंसान के चारों ओर होने वाले परिवर्तन उसके लिए सुख का संदेश भी हैं और दुख का कारण भी। उसे राहत भी पहुंचाते हैं और तकलीफ़ भी, उनसे वह स्वास्थ्य-लाभ भी प्राप्त करता है और रोग से भी ग्रसित होता है। इसलिए वह इन परिवर्तनों का एक तमाशाई की हैसियत से अध्ययन नहीं कर सकता, बल्कि वह इनके बारे में सोचने को विवश है कि इन परिवर्तनों के पीछे कौन से कारक हैं और यह सब कुछ क्यों हो रहा है?

कभी वह सोचता है कि न ज़मीन पर उसका आदेश चलता है न आसमान पर, उसकी मर्ज़ी का पाबंद न सूरज है न चांद, उसकी आज्ञा का पालन न पानी करता है न हवा। वह ऐसा प्राणी है जो इस ब्रह्माण्ड की अनगिनत शक्तियों के मुक़ाबले में बहुत ही निर्बल और बेबस है, जिन पर कोई ज़ोर और अधिकार नहीं रखता, वे चाहें तो उसे जीवित रखें चाहें तो मार दें, चाहें सेहत व तंदुरुस्ती दें चाहें छीन लें। जैसे ही यह एहसास उसके अन्दर पैदा हुआ दुनिया की हर वह चीज़ उसे डराने लगी जो किसी भी रूप में उसे लाभ या हानि पहुंचा सकती है। ज़मीन की उसने पूजा की, क्योंकि वह बहुत-से ख़ज़ानों की मालिक है। आसमान को देवता बना लिया, क्योंकि उससे नेमतों की वर्षा होती है, पहाड़ों के सामने उसका सिर झुक गया, इसलिए कि वह उससे ऊंचे हैं, समुद्रों से वह

भयभीत हो गया, क्योंकि उसकी लहरें उसे विनष्ट कर सकती हैं। इस प्रकार हर छोटी-बड़ी शक्ति ने उस पर शासन किया और उसने उसका अनुसरण स्वीकार कर लिया।

कभी उसने सोचा कि जिन चीज़ों से वह सहमा हुआ है और जो उसे महान सत्ता एवं सामर्थ्य की मालिक नज़र आती हैं, वे भी बेबस और मजबूर हैं। सूरज हर समय उसे रोशनी क्यों नहीं पहुंचाता? दमकते-चमकते चांद को ग्रहण क्यों लग जाता है? सितारे डूब क्यों जाते हैं? ज़मीन अपनी इच्छा से अन्न क्यों नहीं उपजाती? पहाड़ क्यों एक विशेष विधान से बंधे हैं? क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि इस ब्रह्माण्ड में कुछ अज्ञात शक्तियां काम कर रही हैं, जिनके आदेश से आग प्रकाशमान है, पानी जिनके इशारे से बरसता है और ज़मीन जिसकी अनुमति से अनाज पैदा करती है। सूखा और हरियाली, ख़ुशहाली और बदहाली, तंदुरुस्ती और बीमारी, ग़रीबी और अमीरी, ज़िन्दगी और मौत; तात्पर्य यह कि हर प्रकार का कार्य वे शक्तियां यहां कर रही हैं।

अब इंसान को इसकी चिन्ता हुई कि वह इन शक्तियों को जाने और समझे जिन्हें वह देख तो नहीं रहा है, परन्तु जिनके प्रदर्शन को वह चारों ओर देख रहा है।

परन्तु अनदेखी शक्तियों की यह कल्पना, इंसान की स्वाभाविक जिज्ञासा को समाप्त न कर सकी। उसने सोचा जिन शक्तियों को मैं देख नहीं रहा हूँ, उन्हें क्यों मानूं? जब मुझे नहीं मालूम कि इस ब्रह्माण्ड में किसका शासन चल रहा है तो उसे क्यों स्वीकार करूं? अतः उसने कहा इस ब्रह्माण्ड में कुछ विशेष कारकों के जमा हो जाने से विशेष प्रकार की कुछ घटनाएं घटती हैं। आग जलाती है, वर्षा से पौधों को हरियाली और बढ़ोत्तरी मिलती है, संखिया (एक प्रकार का तेज विष) से आदमी मरता और अमृत से सेहत पाता है। यह सब कुछ होता है परन्तु हम नहीं जानते क्यों ऐसा होता है? हमें जो कुछ मालूम है वह यह कि हम एक ऐसे वातावरण में रहते हैं, जहां हमारे अनुकूल और प्रतिकूल शक्तियां तीव्रता से हर ओर काम कर रही हैं। इसलिए सोचने की बात यह है कि

इन अनुकूल शक्तियों से कैसे लाभ उठाया जाए और प्रतिकूल शक्तियों से कैसे बचा जाए, न यह कि दुनिया क्या है ? इसे किसने पैदा किया ? कौन चला रहा है इसे ? हम कहां से आए हैं ? कहां जाएंगे ? हम पर किसका शासन है ? इस प्रकार के प्रत्येक प्रश्न निरर्थक हैं ।

इंसान को अस्तित्व में आए एक अनुमान के अनुसार पांच लाख साल बीत चुके हैं । इस बीच उसने अनगिनत अनुभव प्राप्त किए, सभ्यता एवं संस्कृति में उन्नति की, नित नई चीज़ों का आविष्कार किया, ज्ञान एवं कला की खोज की जिसके परिणामस्वरूप चिन्तन-मनन के नवीन विषय उसके सामने आते रहे, परन्तु इसके बावजूद उसने अपनी खोज और जिज्ञासा का प्रारम्भ जिस बिन्दु से किया था आज भी वहीं है । उसके मस्तिष्क ने प्रथम दिन जिस आश्चर्य एवं विस्मय की स्थिति में यह प्रश्न छोड़ा था कि यह दुनिया क्या है और मैं क्या हूँ, आज भी उसी आश्चर्य की स्थिति में यह एलान कर रहा है कि यह दुनिया क्या है और मैं क्या हूँ और जब तक वह वास्तविकता से अवगत न हो जाए, यह सवाल उसके लिए रहस्य ही रहेगा ।

सामाजिक सम्बन्ध

मनुष्य स्वभावतः अकेलापन से घबराता है और बड़ी हद तक सामूहिक जीवन व्यतीत करने को विवश भी है, क्योंकि वह दूसरों के सहयोग के बिना अपने खाने, कपड़े और रहने-सहने की समस्याएं तक हल नहीं कर सकता । इसलिए वह हमेशा लोगों से सम्बन्धों की रूपरेखा पर विचार करता रहा है । एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति का क्या सम्बन्ध है ? व्यक्ति और राज्य को जोड़ने वाले उसूल क्या हैं ? औरत और मर्द के सम्बन्धों का सही तरीक़ा क्या है ? पड़ोसी और अजनबी, देशवासी और विदेशी लोगों के साथ किन बुनियादों पर सम्बन्ध हो ? इस प्रकार के जितने प्रश्न उभरते हैं, उनके भिन्न-भिन्न और कभी-कभी विरोधाभासी जवाब उसने दिए हैं । परन्तु कतिपय बातों पर उसका मतैक्य भी रहा है । यह मतैक्य किसी वाह्य शिक्षा के परिणामस्वरूप नहीं बल्कि

प्रकृति के दबाव और उसकी अपेक्षाओं के कारण हुआ है । उसकी प्रकृति ने उसे बताया कि न्याय एवं इंसाफ़, सच्चाई, अमानतदारी, वादा निभाना, क्षमा, दया, प्रेम, सहानुभूति, शुद्धता एवं पतिव्रता गुणों के द्वारा हर प्रकार का सम्बन्ध अच्छा हो सकता है । इसलिए इन गुणों को सामाजिक सम्बन्धों की बुनियाद होना चाहिए । अब तक का अनुभव भी इसका प्रमाण है कि जहां कहीं जिस अनुपात में ये गुण पाए गए उसी अनुपात में मानवीय सम्बन्ध भी अच्छे हुए । सम्बन्ध के इस प्राकृतिक सिद्धान्त को नैतिकता का सिद्धान्त भी कहा जाता है । दुनिया ने देखा कि जब कभी इसकी अवहेलना हुई, सम्बन्धों में बिगाड़ और तनाव पैदा हुआ । अत्याचार एवं ज़ोर-ज़बरदस्ती, झूठ, धोखा, विश्वासघात, बेवफ़ाई, अधिकारों का हनन और प्रतिशोध की भावना ने इंसान को भेड़िया ही नहीं बना दिया बल्कि दूसरों से उसके सम्बन्ध पशुता की सीमा से भी नाचे आ गए ।

परन्तु इस सबके बावजूद प्रश्न नैतिक मूल्यों की पाबन्दी का है । यह प्रश्न इसलिए पैदा होता है कि प्रत्येक व्यक्ति के अपने हित एवं रुचि का केन्द्र दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है । इंसान को अपने निज से जो दिलचस्पी होती है वह दूसरे से नहीं होती । वह अपने बाल-बच्चों एवं परिवार वालों से जितना प्रेम करता है, उतना प्रेम उन व्यक्तियों से नहीं करता जिनका सम्बन्ध उसके परिवार से नहीं होता । उसे अपने देश एवं राष्ट्र से जो लगाव होता है किसी दूसरे राष्ट्र से वह लगाव नहीं हो सकता । यदि इंसान अपने इस पारस्परिक सम्बन्धों में नैतिक मूल्यों का अनुसरण करता है, तो कभी-कभी उसके अपने हित पर चोट लगती है । कभी उसकी अपनी हानि होती है, कभी पारिवारिक सम्बन्ध को क्षति पहुंचती है, कभी देश एवं राष्ट्र के हितों पर आंच आती है । कभी-कभी ये क्षतियां अपनी अन्तिम सीमा को पहुंच जाती हैं । इंसान आसानी से इन्हें सहन नहीं कर पाता और तुरन्त उसके मस्तिष्क में प्रश्न उठता है कि क्या नैतिकता का महत्व इतना अधिक है कि हर स्थिति में उसका सम्मान आवश्यक है ? क्या सच्चाई पर उस समय भी क़ायम रहना चाहिए, जबकि तलवार सिर पर लटक

रही हो? क्या शत्रु को धोखा देना भी कोई अपराध है? क्या क्षमा और दरगुज़र हर हाल में प्रशंसनीय है या कभी प्रतिशोध भी वांछनीय है? यहीं से यह बहस शुरू होती है कि नैतिकता किसे कहते हैं? इसका उद्देश्य क्या है? क्या नैतिक मूल्य अटल हैं या इनमें किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव है?

कुछ चिन्तकों ने इसके जवाब में स्पष्ट रूप से कह दिया और अधिकतर लोगों का व्यवहार एवं आचरण इसी बात का समर्थन करता है कि नैतिक मूल्यों की पाबन्दी हर समय ज़रूरी नहीं, बल्कि कभी-कभी इनके विपरीत आचरण करना ज़रूरी हो जाता है। किसी बाप का बेटे की हत्या करना नैतिक अपराध है, परन्तु बेटा यदि राष्ट्रद्रोही हो तो बाप का यह क़दम राष्ट्र के साथ उसकी वफ़ादारी का प्रमाण है। सच कहना नैतिक गुण है, परन्तु शत्रु को वस्तुस्थिति से अवगत कराना मूर्खता है। आतिथ्य-सत्कार एवं नम्रता अच्छे गुण हैं, परन्तु यदि इसके प्रकट करने से आदमी का अपमान एवं अपयश हो और उसके सम्मान को हानि पहुंचे, तो यही गुण अवांछनीय हैं।

परन्तु यदि इस मान्यता को स्वीकार कर लिया जाए कि व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय हित के लिए नैतिक मूल्यों को नज़रअंदाज़ किया जा सकता है तो किसी भी व्यक्ति से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह इस पर अडिग रहेगा, क्योंकि हर व्यक्ति को अपना हित अधिक प्रिय एवं मूल्यवान होता है, चाहे दुनिया उसे कितना ही तुच्छ और मूल्यहीन ही क्यों न समझे। इसलिए यह फ़ैसला कठिन है कि अमुक लाभ को नैतिकता से उच्चतर होना चाहिए और अमुक को निम्नतर।

इस दृष्टिकोण के विपरीत कुछ लोगों ने कहा कि नैतिकता को हर लाभ एवं हानि से ऊपर होना चाहिए। सच्चाई से विमुखता कभी सही नहीं है, चाहे उसके नतीजे में सिर, धड़ से अलग हो जाए और बड़ी से बड़ी क्षति ही क्यों न उठानी पड़े। न्याय एवं इंसाफ़ का दामन नहीं छोड़ा जा सकता, चाहे उसके घेरे में अपनी औलाद ही क्यों न आए। विश्वासघात हर हाल में अनुचित है, चाहे उससे राष्ट्र एवं देश को कितना ही बड़ा नुक़सान क्यों न पहुंचे।

लेकिन क्या इंसान नैतिक मूल्यों के लिए हमेशा इतनी बड़ी क़ुर्बानियां दे सकेगा ? क्या सत्ता एवं सामर्थ्य के होते हुए वह ज़ोर-ज़बरदस्ती एवं हिंसा से बाज़ रह पाएगा ? क्या निर्धनता और दरिद्रता की अवस्था में चोरी करने से वह बच पाएगा ? क्या कामेच्छा के वशीभूत होकर भी वह पवित्रता एवं अस्मिता पर क़ायम रह पाएगा ?

इसका जवाब यह दिया जाता है कि नैतिक मूल्यों का सम्मान चूँकि इंसान का स्वभाव है, इसलिए इन मूल्यों की अवहेलना को उसकी अन्तरात्मा ने हमेशा अपराध ही समझा है । **यदि नैतिक मूल्यों के विरुद्ध किसी ने कोई कार्य किया है, तो** वाह्य-प्रभावों के दबाव से किया है । ये प्रभाव न हों तो वह नैतिक मूल्यों के लिए हर प्रकार की कठिनाई झेल सकता है । इसलिए हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि इंसान की अन्तरात्मा जागे और उसका स्वभाव दूषित न होने पाए । फिर न तो कोई किसी की इज़्ज़त लूटेगा और न किसी के जान-माल पर क़ब्ज़ा करेगा और न धोखा, फ़रेब, दोषारोपण जैसे अनैतिक कृत्य में लिप्त हो सकेगा ।

क़ानून

इसमें संदेह नहीं कि इंसान स्वभावतः भलाई-पसंद है, परन्तु उसे विचार और कर्म की आज़ादी भी है, इसलिए बड़े-से-बड़ा अपराध भी उससे अनपेक्षित नहीं है । वह दूसरों को नुक़्सान पहुंचा सकता है, राष्ट्र के साथ ग़द्दारी कर सकता है, देश के हित के विरुद्ध संघर्ष कर सकता है, तात्पर्य यह कि हर ग़लत और नाजायज़ काम उसके लिए सम्भव है । इसीलिए क़ानून की ज़रूरत महसूस हुई । नैतिकता के द्वारा सम्बन्धों को मधुर तो बनाया जा सकता है, परन्तु उन्हें क्षति से नहीं बचाया जा सकता । यह काम क़ानून का है । क़ानून के बिना मात्र नैतिकता के सहारे कोई सामूहिक जीवन उसी समय चल सकता है, जबकि इंसान फ़रिश्ता बन जाए और उससे किसी अनैतिक कृत्य की संभावना शेष न रहे । परन्तु स्वयं क़ानून के सम्बन्ध में प्रश्न पैदा होता है कि सही क़ानूनों और ग़लत क़ानूनों का ज्ञान कैसे हो ? कौन निश्चित करे कि मनुष्य का अमुक कर्म व्यक्ति और समाज के

प्रति हानिकारक है और अमुक लाभदायक? वह कौन-सी सीमा है जिसके अन्तर्गत व्यापार, खेती, शिक्षा, संस्कृति, राजनीति और अभिव्यक्ति की आज़ादी मिलनी चाहिए? और कहां यह सीमा समाप्त हो जाती है?

इसके जवाब में अधिनायकतन्त्र (राजतन्त्र) ने कहा क़ानून बनाने का अधिकार उस व्यक्ति का है, जो राष्ट्र में सबसे बड़ा है जिसके हाथ में सत्ता एवं सामर्थ्य है, वही राष्ट्र की भलाई और बुराई को समझ सकता है। किसी दूसरे में न तो यह योग्यता होती है कि वह राष्ट्र के लाभ-हानि का निर्णय करे और न उसे इसका अधिकार ही प्राप्त है। इस व्यवस्था के सत्ताधारी का काम है आदेश देना और नागरिकों का काम है उसके आदेशों का पालन करना। यह अधिनायक-तन्त्र का उसूल है, इससे कम पर वह तैयार नहीं होता।

अधिनायकतन्त्र या राजतन्त्र पर यह आपत्ति की गई कि उसकी क्या ज़मानत है कि राष्ट्र का सबसे बड़ा व्यक्ति जो भी क़ानून बनाएगा वह सर्वथा राष्ट्र के लिए लाभदायक ही सिद्ध होगा? क्या वह अपने व्यक्तिगत हित को दूसरों के हितों पर प्रधानता नहीं दे सकता? क्या उससे यह अपेक्षित नहीं कि जन-भावनाओं को ठेस पहुंचा कर और न्याय एवं इंसाफ़ को छोड़कर अत्याचार का रास्ता अपना लेगा, विशेषकर तब जबकि वह सत्तासीन हो और उससे जवाबदेही करने वाली शक्ति मौजूद न हो? यह मात्र आशंका ही नहीं बल्कि अधिनायक-तन्त्र का सम्पूर्ण इतिहास इसका समर्थन करता है। इंसानों ने सत्ता के नशे में भेड़ियों और दरिन्दों से भी ज़्यादा दरिंदगी का प्रदर्शन किया है।

अधिनायकतन्त्र के इन भयानक परिणामों से मुक्ति पाने के लिए यह उपाय किया गया कि क़ानून बनाने का अधिकार पूरी जनता को दे दिया गया कि वह अपने भाग्य का स्वयं ही मालिक हो और उसके भले-बुरे का फ़ैसला किसी एक व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर न हो।

यहां यह प्रश्न पैदा होता है कि जनता अपने अधिकार का कैसे उपयोग करे, स्पष्ट है कि न तो यह सम्भव है कि जनता के सम्पूर्ण व्यक्ति मिलकर अपने लिए क़ानून बना सकें और न प्रत्येक व्यक्ति में उसकी योग्यता ही होती है। इसलिए

यह तरीक़ा सुझाया गया कि जनता अपने प्रतिनिधि चुने, जो उसके लिए क़ानून बनाएं। इन प्रतिनिधियों का बनाया हुआ क़ानून मानो जनता का अपना क़ानून होगा, क्योंकि ये प्रतिनिधि उसके विश्वासपात्र और उसके विचारों के प्रवक्ता होते हैं। जब तक ये प्रतिनिधि जनता का प्रतिनिधित्व करेंगे और जब तक जनता का इन पर विश्वास रहेगा; वह उन्हें बाक़ी रखेगी और यदि वे उसकी मर्ज़ी और इच्छाओं को नज़रअंदाज़ करेंगे तो वे अपना विश्वास खो देंगे और जनता उन्हें हटा देगी। इस उद्देश्य के लिए जनता को हर चंद साल बाद मौक़ा दिया जाएगा कि वह अपने प्रतिनिधियों के सम्बन्ध में अपनी इच्छा प्रकट कर सके। यह क़ानून बनाने की लोकतांत्रिक परिकल्पना है।

परन्तु लोकतन्त्र पर उसी प्रकार की आपत्ति की जा सकती है जैसी अधिनायक-तन्त्र या राजतन्त्र पर की जाती है। क्योंकि जनतंत्र के इस प्रस्तावित समाधान में भी सम्पूर्ण जनता के विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता, केवल एक छोटी-सी तादाद का प्रतिनिधित्व होता है। जनता का लगभग आधा भाग उन लोगों पर आधारित होता है जिनकी उम्र एवं योग्यता ही इतनी नहीं होती कि वे किसी मामले में अपनी राय दे सकें और जो उम्र के लिहाज़ से इस योग्य होते हैं कि अपने प्रतिनिधि चुनें उनमें भी एक बड़ी तादाद को इससे कोई दिलचस्पी नहीं होती कि क्या क़ानून बनेगा और कौन बनाएगा? यदि थोड़ी-बहुत दिलचस्पी होती भी है तो व्यवहारत: वे उससे अलग रहते हैं। इन परिस्थितियों में विभिन्न पार्टियां और कुछ व्यक्ति अपना कार्यक्रम एवं योजना प्रस्तुत करते हैं। जिस पार्टी को मत देने वालों का बहुमत प्राप्त होता है, उसी को शासन करने का अधिकार प्राप्त होता है, चाहे यह 'बहुमत' विरोधी पार्टियों के मुक़ाबले में 'अल्प मत' ही क्यों न हो। मान लिजिए किसी स्थान पर मत देने वालों की संख्या पचास हज़ार है और उनके सामने दस पार्टियां हैं, यदि उनमें से किसी को पांच हज़ार से कुछ ही अधिक मत प्राप्त हो गए तो लोकतन्त्र के अनुसार वह पचास हज़ार लोगों की प्रतिनिधि पार्टी मान ली जाएगी।

तात्पर्य यह कि लोकतन्त्र के बताए हुए तरीक़े के अनुसार अधिक-से-

अधिक दस प्रतिशत व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व होता है। इस दस प्रतिशत व्यक्तियों के सम्बन्ध में क्या विश्वास कि वे शेष नव्वे प्रतिशत व्यक्तियों का भी सही प्रतिनिधित्व करेंगे और उनका भला चाहने वाले होंगे, फिर लोकतन्त्र जनता को मतदान के लिए जो अवधि तय करती है, उसमें उन दस प्रतिशत लोगों की रायें भी बदलती रहती हैं जिनके प्रतिनिधि प्रतिनिधित्व करते हैं। और ऐसे लोग तो बहुत होते हैं जो इस अवधि के प्रारम्भ होने के समय मत देने के योग्य नहीं होते और इस अवधि के बीच में इसके योग्य हो जाते हैं, आख़िर इन सब का प्रतिनिधित्व ये प्रतिनिधि कैसे कर सकते हैं ?

इन आपत्तियों को आज तक लोकतन्त्र का बड़ा-से-बड़ा समर्थक भी हल न कर सका। वास्तविकता यह है कि लोकतन्त्र अधिनायक-तन्त्र या राजतन्त्र का ही एक परिष्कृत रूप है। राजतन्त्र में सत्ता एक व्यक्ति के अन्दर केन्द्रित होती है और लोकतन्त्र एक छोटे-से समूह के प्रतिनिधि ग्रुप में हस्तांतरित हो जाती है। किसी लोकतांत्रिक व्यवस्था को चलाने के लिए जन-समर्थन की जितनी ज़रूरत होती है, एक डिक्टेटर (तानाशाह) भी अपनी सत्ता को बचाने के लिए उतने ही समर्थन का मुहताज होता है। वह भी राष्ट्र के एक वर्ग विशेष को ख़ुश रखने पर मजबूर है, अन्यथा उसकी सत्ता क़ायम नहीं रह सकती।

दृष्टिकोण, सामाजिक सम्बन्ध और क़ानून, इंसान हमेशा इन्हीं तीन समस्याओं में उलझा रहा है। वह इनका एक समाधान ढूंढता है। जब वह व्यवहार की दुनिया में ग़लत सिद्ध होता है तो पश्चाताप एवं निराशा के साथ एक नए समाधान की तलाश में जुट जाता है। जब उससे भी उसकी उलझनें दूर नहीं होतीं तो अपनी असफलता का एलान करके एक तीसरा समाधान ढूंढने लगता है। इस प्रकार वह ग़लत दृष्टिकोण, ग़लत नैतिक मूल्यों और ग़लत क़ानून के भंवर से निकलने नहीं पाता कि फिर उसी में फंस जाता है।

इतिहास बताता है कि इंसान को किसी आसमानी और ज़मीनी मुसीबत ने उतना नुक़्सान नहीं पहुंचाया जितना उन दृष्टिकोणों ने पहुंचाया, जिन्हें स्वयं उसने गढ़ा था। महामारियों और रोगों ने उसे जितना तबाह किया उससे कहीं अधिक

ग़लत नैतिक मूल्यों से वह तबाह हुआ। उसके बनाए हुए क़ानून की तलवार ने जिस निर्ममता से उसका ख़ून बहाया, किसी सैलाब और आंधी ने भी उस संगदिली और निर्ममता का प्रमाण नहीं दिया।

नृशंसता की इस लम्बी दासतान में हमें ऐसे अन्तराल भी मिलते हैं जिनमें इंसान ने सुकून और चैन से जीवन व्यतीत किया है और उसको सही दृष्टिकोणों, सही नैतिक मूल्यों और सही क़ानूनों की दौलत मिली है। ये अन्तराल यद्यपि बहुत संक्षिप्त हैं, परन्तु ये इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ हैं। इसे नज़रअंदाज़ करने के बाद इतिहास में हर ओर अंधेरा ही अंधेरा नज़र आता है। इतिहास को यह प्रकाश इस्लाम ने प्रदान किया है जिसे हर काल में अल्लाह के श्रेष्ठ एवं महान बंदे दुनिया के समक्ष पेश करते रहे हैं। आगामी पृष्ठों में इसकी एक झलक आपको नज़र आएगी। काश, आज का भटका हुआ इंसान इस रोशनी में अपना सफ़र तय करता। मंज़िल उसका स्वागत करती और इतिहास में एक सफल यात्रा का अध्याय जुटता, परन्तु क्या अभी वह इसके लिए तैयार नहीं है?

जीवन की समस्याओं का इस्लामी समाधान

आस्थाएं एवं दृष्टिकोण

इस्लामी दृष्टिकोणों की बुनियाद कुछ ऐसी वास्तविकताओं पर है, जिनका ज्ञान हम अपनी इन्द्रियों से नहीं प्राप्त कर सकते, परन्तु हमारा अध्ययन एवं अवलोकन उनका पूरा-पूरा समर्थन करता है। ग़ैर-इस्लामी दृष्टिकोणों और इस्लामी दृष्टिकोणों में अन्तर यही है कि ग़ैर-इस्लामी दृष्टिकोण या तो इंसान के दिन-प्रतिदिन के अवलोकनों एवं अनुभूतियों ही को झुठलाते हैं या उनके स्वाभाविक एवं तार्किक परिणामों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते, परन्तु इस्लाम जो दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, वह इस ब्रह्माण्ड से पूर्णतः सामंजस्य रखता है। इन्हें मानने से इंसान न तो दिन को रात और रात को दिन कहने पर विवश होता है और न उसे अपने किसी अनुभव एवं अनुसंधान का खण्डन करना पड़ता है।

ग़ैर-इस्लामी दृष्टिकोण दो प्रकार की परिकल्पनाएं पेश करते हैं। एक शिर्क (बहुदेववाद) की परिकल्पना दूसरे भौतिकता की परिकल्पना।

शिर्क

'शिर्क' का मतलब यह है कि इस ब्रह्माण्ड की रचना में बहुत-सी हस्तियों की भागीदारी है। किसी ने पानी पैदा किया, किसी ने हवा, किसी ने खाद्यान्न, किसी ने आग, किसी ने जीवन-मृत्यु को और किसी ने अंधकार एवं प्रकाश को— और वे ही इनका नियंत्रण कर रही हैं। पानी का स्रष्टा पानी बरसाता है और खाद्यान्न का स्रष्टा अन्न उपजाता है। जीवन-मृत्यु का रचयिता जीवन प्रदान करता और मारता है। अंधकार एवं प्रकाश का पैदा करने वाला रोशनी और अंधेरे पर नियंत्रण रखता है। शिर्क की परिकल्पना अपने इस दावे के पक्ष में यह

तर्क देती है कि यदि इस ब्रह्माण्ड को किसी एक हस्ती ने पैदा किया होता तो विपरीत शक्तियां काम करती हुई नहीं पाई जातीं, बल्कि एकता और समानता होती। रचनात्मक क्रियाओं के साथ-साथ विघटनकारी क्रियाएं भी बताती हैं कि सत्ता एवं सामर्थ्य का स्वामी यहां अकेले कोई एक हस्ती नहीं है, बल्कि बहुत-सी हस्तियों का आदेश यहां चल रहा है। शिर्क यह नहीं सोच सकता कि जिसके हाथ ने किसी आकृति को उभारा हो वही उसे मिटा सकता है। वह यदि यह स्वीकार भी करता है कि यह ब्रह्माण्ड केवल एक हस्ती की रचना है, तो इस पर नियंत्रण एवं सत्ता एक से अधिक हस्तियों की मानता है। ऐसी सत्ता जिन्हें ब्रह्माण्ड का असल रचयिता भी चुनौती नहीं दे सकता।

इस ब्रह्माण्ड के भिन्न-भिन्न प्रकार के परिदृश्यों को देख कर यह समझना कि इनके पीछे विभिन्न शक्तियां कार्यरत हैं, नादानी है। क्योंकि यहां परिदृश्य विभिन्न हैं, यथार्थ विभिन्न नहीं है। यह ब्रह्माण्ड एक नियम और उसूल के तहत चल रहा है, इसमें मतभेद नहीं हो सकता। इस में संदेह नहीं कि इस ब्रह्माण्ड में विकास एवं विनाश दोनों ही हैं, परन्तु एक क़ानून के अधीन हैं। फूल जिस नियम के तहत खिलता है, वही नियम उसके मुरझा जाने का कारण बनता है। यह ब्रह्माण्ड विपरीत शक्तियों का अखाड़ा तब समझा जाता जबकि वह किसी एक उसूल पर क़ायम न होता।

शिर्क की परिकल्पना इस ब्रह्माण्ड की जो व्याख्या करती है वह वास्तविकता के विपरीत तो है ही, इंसान का अब तक का अनुभव भी इसे ग़लत क़रार देता है, क्योंकि इंसान ने इतिहास में अब तक जो सबसे बड़ा अनुभव प्राप्त किया है, वह यह है कि जब सत्ता दो बराबर के हिस्सों में बंटी तो उसमें अनिवार्य रूप से विरोध एवं बिखराव भी पाया गया। परन्तु हम इस ब्रह्माण्ड में असाधारण संतुलन एवं सामंजस्य देखते हैं। यहां कई ख़ुदाओं का आदेश चलता तो इस संतुलन एवं एकता का पाया जाना असम्भव था। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं कि एक समय में दो मालिकों के आदेशों का पालन करे, उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड में एक से दूसरी सत्ता नहीं चल सकती, यदि

ज़मीन की व्यवस्था एक के हाथ में और आसमान की दूसरे के हाथ में है तो दोनों में एकता कैसे पैदा हो गई? उनकी व्यवस्था में कहीं टकराव नहीं है। सूरज जिसके आदेश से परिक्रमा कर रहा है, यदि चांद पर भी उसका आदेश लागू नहीं है तो कौन-सी शक्ति दोनों को एक व्यवस्था में जकड़े हुए है। समुद्र एवं थल पर दो अलग-अलग प्रशासक शासन कर रहे हैं, तो वे एक-दूसरे पर विजयी होने का प्रयास क्यों नहीं करते ?

ज़मीन पर जो जीवन हम देखते हैं, यह उस समय तक पाया नहीं जा सकता जब तक कि उसके लिए समुचित वातावरण एवं पर्यावरण न मिले। सूरज एक निश्चित मात्रा में ऊष्मा न पहुंचाए, बादल से पानी न बरसे, रात एवं दिन की आवृति न हो। यदि सूरज और बादल की व्यवस्था और रात एवं दिन की आवृति किसी एक हस्ती के क़ब्ज़े में नहीं है, तो एक छोटे-से पौधे के विकास के लिए ये सारी चीज़ें एक विशेष अनुपात के साथ कैसे एकत्रित हो जाती हैं ?

उसी प्रकार इंसान एवं अन्य प्राणियों के जीवन के लिए आवश्यक है कि उन्हें समुचित हवा, पानी, आहार एवं अन्य आवश्यकताएं प्राप्त हों। यदि ये आवश्यकताएं एक विशेष अनुपात में प्राप्त न हों तो इनका अस्तित्व असम्भव है। हम देखते हैं कि प्रत्येक प्राणी अपने अस्तित्व एवं विकास के लिए जिन चीज़ों का जिस मात्रा में मुहताज है, वे उसी मात्रा में उसे मिल रही हैं। न उनमें कमी होती है, न अधिकता। कभी ऐसा नहीं होता कि पानी ज़रूरत से ज़्यादा प्राप्त हो और हवा ज़रूरत से कम मिले। उसके पास सोने और चांदी, लोहे और कोयले का भण्डार तो बहुत हो, परन्तु अनाज से वह वंचित रहे।

यह इस बात का प्रमाण है कि इस ब्रह्माण्ड को केवल एक हस्ती अपने सामर्थ्य एवं विवेक से चला रही है। वरना इन विभिन्न चीज़ों में संतुलन नहीं पाया जाता। कभी हवा इतनी बढ़ जाती कि उससे ज़मीन की नमी समाप्त हो जाती और कभी पानी इतना बढ़ जाता कि ज़मीन निवास-स्थल न बन पाती।

अब शिर्क (बहुदेववाद) की इस धारणा को लीजिए कि इस ब्रह्माण्ड का रचयिता तो एक है, परन्तु इस पर आदेश एक से अधिक शक्तियों का चल रहा

है। यह धारणा इंसान के स्वभाव से किसी प्रकार मेल नहीं खाती। इंसान इस दुनिया में आते ही जिन चंद प्रारम्भिक तथ्यों का अनुभव करता है उनमें एक यह भी है कि जिस चीज़ के बनाने और तैयार करने में अकेले उसने अपनी ऊर्जा ख़र्च की हो उस पर क़ब्ज़ा भी उसी का होना चाहिए, किसी दूसरे व्यक्ति को उस पर नियंत्रण का कोई अधिकार नहीं है। इंसान की यह स्वाभाविक अनुभूति इस कल्पना को स्वीकार करने की अनुमति नहीं देती कि आसमान और ज़मीन के इस आश्चर्यजनक कारख़ाने को जिस हस्ती ने पैदा किया अकेले वही इसकी मालिक नहीं है, बल्कि इसमें बहुत-सी दूसरी हस्तियां भी साझीदार हैं।

इंसान की अन्तरात्मा और उसकी अनुभूतियां पुकार-पुकार कर कह रही है कि जो इस ब्रह्माण्ड का रचयिता है वही इसका जायज़ मालिक और प्रशासक भी है। उसी का आदेश इस ब्रह्माण्ड में चलना चाहिए। इस ब्रह्माण्ड की रचना में जिनका कोई हिस्सा नहीं, आख़िर वह किस आधार पर इसके मालिक और प्रशासक हो सकते हैं।

यदि यह कहा जाए कि इस ब्रह्माण्ड का पैदा करने वाला इसकी व्यवस्था दूसरों को सौंप कर खुद अलग हो गया है, तो यह समझ में नहीं आने वाली बात है। क्या इस ब्रह्माण्ड की व्यवस्था उसके रचयिता के लिए इतनी कठिन थी कि वह अपना बोझ दूसरों के सिर डाल कर ख़ुद अलग हो गया? यदि वास्तविकता यही है कि इस ब्रह्माण्ड की व्यवस्था कर पाने से इसका पैदा करने वाला असमर्थ है तो दुनिया की वह कौन-सी हस्ती है, जिसमें इस बड़े बोझ को उठाने की शक्ति है?

शिर्क की मानसिकता इस बुद्धि के विरुद्ध कल्पना को बुद्धिसंगत साबित करने के लिए कभी एक-दूसरे रूप में इसे पेश करती है, वह यह कि ब्रह्माण्ड के रचयिता के दरबार में उसकी कुछ रचनाओं की इतनी पहुंच है कि वह उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता, परन्तु इससे ख़ुद ब्रह्माण्ड के रचयिता की परिकल्पना को ही धक्का लगता है। क्योंकि सूरज और चांद, थल एवं समुद्र के रचयिता के बारे में यह बड़ी बुरी धारणा है कि उसकी कुछ रचनाओं को उस प

श्रेष्ठता दी जाए एवं प्रशासक माना जाए। ऐसी बेबस और विवश हस्ती जो किसी सजीव अथवा निर्जीव हस्ती के अधीन हो, उसके सम्बन्ध में यह सोचना भी मूर्खता है कि वह इस लम्बे-चौड़े ब्रह्माण्ड की रचना कर सकती है।

तात्पर्य यह कि शिर्क की सभी परिकल्पनाएं इंसानी स्वभाव के लिए अपरिचित और इससे बहुत दूर हैं। इसे वही व्यक्ति स्वीकार कर सकता है, जिसके स्वभाव पर पर्दे पड़े हुए हों।

भौतिकता

अब भौतिकता पर विचार कीजिए। इसका कहना यह है कि इस ब्रह्माण्ड को किसी विवेकशील हस्ती ने पैदा नहीं किया, बल्कि यह एक ऐसे तत्त्व से अस्तित्व में आया है जो अपने अन्दर गति रखता था और अपनी उसी गति से स्वयं ही विभिन्न ग्रहों का रूप धारण करता चला गया। इसके परिणामस्वरूप कहीं सूरज, कहीं चांद, कहीं मंगल ग्रह, कहीं हमारी यह ज़मीन और इनके अतिरिक्त अन्य सैकड़ो-हज़ारों ग्रह अस्तित्व में आ गए, और फिर धीरे-धीरे प्रत्येक ग्रह में उसके अनुकूल परिस्थितियां जमा होनी शुरू हो गईं। इसी निर्जीव तत्व से सजीव और निर्जीव, विवेकशील और विवेकहीन, स्थिर एवं गतिमान हर प्रकार की चीज़ें अस्तित्व में आने लगीं। बिल्कुल उसी प्रकार जैसे किसी जगह एक लम्बे समय तक लगातार कंकड़ और पत्थर फेंके जाते रहें, इससे कहीं पहाड़ तैयार हो जाए, कहीं इमारत बन जाए, कहीं नाला और नहर, कहीं सड़कें और पुल और कहीं सराय और होटल निर्मित हो जाए। उसी कंकड़ और पत्थर के ढेर से इंसानों और जानवरों का सिलसिला भी प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे वहां एक नियमित और संगठित बस्ती आबाद हो जाए।

ब्रह्माण्ड की यह व्याख्या इंसान की बुद्धि और उसके अनुभवों के बिल्कुल विपरीत है। इंसान के अतीत का लम्बा अनुभव और वर्तमान का अवलोकन बताता है कि आज तक ख़ुद से न कोई देश फ़तह हुआ, न कोई फुलवारी सुसज्जित हुई, न कोई कारख़ाना अस्तित्व में आया यहां तक कि कोई लेख और

कोई पत्र अपने आप लिखित रूप में नहीं आया। एक तुच्छ-सा तिनका भी अपनी जगह से हरकत नहीं करता जब तक कि कोई उसे हरकत न दे और जो काम जितना बड़ा हो उसके लिए उतने ही चिन्तन-मनन, परिश्रम, ध्यान और योजना की आवश्यकता पड़ती है। एक भव्य भवन और अच्छी मशीन उस समय अस्तित्व में आती है, जबकि श्रेष्ठ योग्यता रखने वाले व्यक्ति अपना मानसिक एवं व्यावहारिक प्रयास इसके लिए करते हैं।

इंसान अपने अनुभवों के विपरीत कैसे सोच सकता है कि यह विशाल और असीमित ब्रह्माण्ड किसी पैदा करने वाले के बिना ही अस्तित्व में आ गया। यह ब्रह्माण्ड जिसके अन्दर कहीं कोई कमी और कोई टकराव नहीं पाया जाता, जिसकी हर चीज़ अपनी सुन्दरता के लिहाज़ से बढ़ी हुई है और अपनी-अपनी जगह पर इस प्रकार जड़ी हुई है कि यदि उसे वहां से अलग कर दिया जाए तो उसकी सारी व्यवस्था गड्ड-मड्ड हो जाए। यह सूरज, चांद यह हमारी ज़मीन और अनगिनत ग्रह एक विशेष संतुलन के साथ अपने-अपने मण्डल में परिक्रमा कर रहे हैं। इस संतुलन में नाममात्र को भी अन्तर हो जाए तो यह ब्रह्माण्ड देखते-देखते समाप्त हो जाए। इंसान यह सोचकर ही हैरान रह जाता है कि क्या कोई अंधा और बहरा हाथ किसी काम में इस प्रकार संतुलन एवं सामंजस्य स्थापित कर सकता है?

फिर क्या विवेकहीन तत्व की संयोगवश गति ही ने आग में ऊष्मा, पानी में शीतलता, पत्थर में कठोरता, मोम में नर्मी, अमृत में जीवन और संखिया में मृत्यु रख दी? क्या इसी से चुम्बक के अन्दर आकर्षण और लोहे के अन्दर आकर्षित होने के गुण पैदा हो गए? एक ही ज़मीन में क्या संयोगवश ही लोहा और कोयला, सोना और चांदी, नमक एवं दूसरे खनिज एकत्रित हो गए? क्या यह संयोग ही है कि ब्रह्माण्ड की विभिन्न एवं विपरीत चीज़ें एक-दूसरे की पूरक हैं? सूरज की गर्मी से समुद्र के पानी का वाष्पीकरण होता है, यह वाष्प ऊपर उठता है, हवा उसे वातावरण में फैला देती है। ज़मीन का गुरुत्वाकर्षण उसे अपनी ओर खींचता है और वह पानी बन कर बरसने लगता है। इससे ज़मीन को जीवन

और वह शक्ति मिलती है, जो उन सभी चीज़ों के जीवन का ज़रिया बनती है ः ज़मीन पर रहते और बसते हैं। क्या यह सब कुछ संयोगवश ही होता है ?

भौतिकवाद की परिकल्पना न तो इस ब्रह्माण्ड के अन्दर किसी प्रकार फि बैठती है और न इंसान की बुद्धि और उसके अनुभव इसका समर्थन करते है परन्तु इसे इसलिए स्वीकार कर लिया गया कि इंसान इस ब्रह्माण्ड की कं भौतिक और स्पष्ट व्याख्या करना चाहता था, क्योंकि उसने यह पहले तय व लिया कि इस ब्रह्माण्ड की वास्तविकता इसे दिखने वाले परिदृश्यों के अन सीमित है। इस पर्दे के पीछे कोई चीज़ नहीं पाई जाती, हालांकि यह एक कल्प मात्र है। इस काल्पनिक धारणा के पक्ष में उसने अब तक कोई निश्चित प्रम नहीं पेश किया, यह उसका दुस्साहस है कि अपनी निगाह से परे किसी वस्तु अस्तित्व से इनकार कर दिया और अपनी अज्ञानता को ज्ञान एवं विश्वास नाम देकर ब्रह्माण्ड की ऐसी व्याख्या पर आग्रह करने लगा जिसका वह दो अ दो चार की तरह प्रयोग कर सके और जिसकी पुष्टि इंद्रियों के द्वारा उसके लि सम्भव हो, हालांकि इस ब्रह्माण्ड की किसी स्पष्ट व्याख्या के लिए जिस व्याप ज्ञान और अवलोकन की ज़रूरत है वह अभी तक उसे प्राप्त नहीं है। भू-मंडल जिस पर वह रहता-बसता है, इसके सम्बन्ध में भी उसका ज्ञान ब थोड़ा है और ब्रह्माण्ड का अधिकतर भाग तो उसके लिए एक रहस्य है और नई-नई जानकारियां खोजी जा रही हैं, वे उसे इस अथाह ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध तुच्छता एवं बेबसी स्वीकार करने पर विवश करती हैं।

इन थोड़ी-सी जानकारियों को लेकर इंसान इस विस्तृत ब्रह्माण्ड के प्रार और अंत को मालूम करना चाहता है। वह इनकी बुनियाद पर केवल अटव लगा सकता है, उसके पास वास्तविकता को जानने का कोई निश्चित अ प्रामाणिक माध्यम नहीं है।

वास्तविकता का ज्ञान

इस्लाम वास्तविकता का ज्ञान हमें प्रदान करता है। वह ब्रह्माण्ड के सम्ब

में ऐसी परिकल्पना प्रस्तुत करता है, जिससे वे सभी प्रश्न हल हो जाते हैं जो शिर्क और भौतिकता ने पैदा किए हैं। इससे निश्चित रूप से मालूम होता है कि यह ब्रह्माण्ड कैसे अस्तित्व में आया, इसमें व्यवस्था और संतुलन कैसे स्थापित है और वह चल कैसे रहा है?

वह कहता है कि यह ब्रह्माण्ड ख़ुद से अस्तित्व में नहीं आया, बल्कि इसे एक पैदा करने वाले ने पैदा किया है। वह अपने आप में अकेला है, कोई उसके समतुल्य और साझेदार नहीं, उसका न कोई सलाहकार है और न सहयोगी। उसकी सत्ता सबसे महान और उच्च है, विशाल और अनंत है। यह सारा ब्रह्माण्ड उसके आदेश का पालक है। उसकी इच्छा के बिना न तो किसी पेड़ का पत्ता गिर सकता है और न चींटी रेंग सकती है। सब उसके मुहताज हैं और वही उनकी ज़रूरतें पूरी करता है। उसके अतिरिक्त कोई नहीं जो किसी की कोई मनोकामना पूरी कर सके। वह बुद्धिमान और दूरदर्शी है, और बुद्धिमानी एवं विवेकशीलता के साथ इस ब्रह्माण्ड को चला रहा है। उसके किसी काम में त्रुटि और ख़राबी नहीं दिखाई जा सकती। वह भलाई और ख़ूबियों का स्रोत और ग़लतियों और ख़ामियों से बिल्कुल पाक है।

इस परिकल्पना की पुष्टि ब्रह्माण्ड में प्रत्येक ओर से होती है। यहां की छोटी-बड़ी प्रत्येक चीज़ चाहे वह सूरज हो या मिट्टी का छोटा-सा कण, एक सर्वोच्च सत्ता का मुहताज है। इसके बिना न तो उसका अस्तित्व ही सम्भव है और न वह अपना काम कर सकती है। ज़मीन एवं आसमान की हरकत, ग्रहों की परिक्रमा, हवा एवं पानी की व्यवस्था ख़ुद बोल रही है कि इस ब्रह्माण्ड का एक रचयिता है और वही इसे चला रहा है।

इस परिकल्पना के अतिरिक्त कोई दूसरी परिकल्पना, ब्रह्माण्ड पर न तो पूर्णतः चरितार्थ होती है और न उससे इस ब्रह्माण्ड की पूर्ण व्याख्या होती है।

यही परिकल्पना मनुष्य के लिए सबसे अधिक स्वीकार करने योग्य है, क्योंकि यह उसकी बुद्धि और अनुभवों के अनुकूल एवं सादृश्य है। वह किसी अस्तित्व की कल्पना नहीं कर सकता जब तक कि कोई उसे अस्तित्व में लाने

वाला न हो और न कभी उसे इसका अनुभव हुआ है। ब्रह्माण्ड की के भौतिकवादी या बहुदेववादी व्याख्या यदि इंसान के समक्ष प्रस्तुत न की जाए इसे देखकर तुरन्त यही कहेगा कि इसे एक सर्व शक्तिमान हस्ती ने पैदा किया और वही इसे चला रही है। इस ब्रह्माण्ड के अध्ययन से इंसान के अन्दर एहसास उभरता है, इस्लाम उसकी पुष्टि करता है।

इस्लाम की ब्रह्माण्ड से संबंधित परिकल्पना ही इंसान की प्रकृति अं उसकी भावनाओं एवं अनुभूतियों से पूर्णतः अनुकूल है किसी और परिकल्प से उसकी भावनाओं की पूर्ति एवं संतुष्टि नहीं होती।

इंसान इस ब्रह्माण्ड के अन्दर हज़ार तरह के साज़ोसामान के बावजूद स्व को निस्सहाय एवं विवश पाता है। एक ओर उसकी स्वाभाविक मांगें, इच्छ और उमंगें हैं और दूसरी ओर उनकी पूर्ति के मार्ग में बाधा डालने वा रुकावटें। ये रुकावटें पग-पग पर उसकी भावनाओं को चोट पहुंचाती हैं अं उसकी अनुभूतियों को सदमा पहुंचाती हैं। इंसान कभी-कभी इन सदमों सहन नहीं कर पाता और मायूसी का शिकार होने लगता है। वह अपना भोज प्राप्त करना चाहे या वस्त्र, कोई भौतिक आवश्यकता पूरी करना चाहे भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक शांति प्राप्त करना चाहे, उसके लिए जिन कार की ज़रूरत होती है, वे उसे हमेशा उपलब्ध नहीं होते। हवा उसकी इच्छा से न चलती, पानी उसके आदेश से नहीं बरसता, आसमान और ज़मीन के भण्ड उसके हाथ में नहीं हैं, सेहत एवं तंदुरुस्ती पर उसका अधिकार नहीं है, इसलि वह एक ऐसे सहारे का मुहताज है जिस पर वह हर वक़्त भरोसा कर सके। व तूफ़ान और आंधी के भंवर में फंस जाए और उसे पुकारे तो वह उसे उस भं से निकाल दे, वह जंगल में रास्ता भटक जाए और उसे आवाज़ दे तो उ मंज़िल तक पहुंचा दे। उसका मासूम और नन्हा बच्चा बीमार हो, रोगी की से करने वाले निराश हो जाएं, डाक्टर जवाब दे दे, ऐसे में यदि वह उसके अ हाथ फैलाए तो उसकी मनाकामना पूरी हो जाय। तात्पर्य यह कि जिसके सम्ब में उसे विश्वास हो कि वह उसकी हर मुश्किल में काम आ सकता है अ

नकी हर मांग को पूरी कर सकता है।

इंसान को एक ऐसी ही हस्ती की तलाश है और उसकी प्रकृति कहती है कि ा ब्रह्माण्ड में उसे ज़रूर होना चाहिए। यह असम्भव है कि जिस ब्रह्माण्ड में वे ाम चीज़ें मौजूद हों जिनका इंसान अपने अस्तित्व एवं विकास के लिए ताज है वहां उसकी एक ऐसी इच्छा की पूर्ति की कोई व्यवस्था ही न हो जो पल उसके अन्दर जन्म लेती रहती है। जो ब्रह्माण्ड हवा और पानी से लेकर दगी की हर छोटी-बड़ी ज़रूरत पूरी करता हो, क्या वह इंसान की वही रत पूरी नहीं करेगा जो यदि पूरी न हो तो ये सारी चीज़ें उसके लिए बेकार

इस्लाम इसके पक्ष में जवाब देता है। वह कहता है कि मनुष्य की प्रकृति की तलाश, निराधार नहीं है, बल्कि इस ब्रह्माण्ड में ऐसा सामर्थ्यवान शक्ति है **नके दामन में इंसान पनाह ले सकता है और वह सामर्थ्यवान अल्लाह है।** की पुष्टि हज़ारों, लाखों नेक और महान लोग करते हैं। ऐसे लोग ज़मीन के क्षेत्र में और हर काल में मिलते हैं। उन्होंने एक ऐसी हस्ती पर अपना ईमान आस्था ज़ाहिर की है, जो उनकी दुआएं सुनता है जिससे वे मांगते हैं तो की मुरादें पूरी हो जाती हैं। वे उसके सामने अपने सिरों को झुकाते हैं तो से निकटता महसूस करते हैं, वे उसकी महानता एवं प्रताप का हर समय लोकन करते हैं और उन्हें हर ओर उसकी सामर्थ्य एवं शक्ति का चमत्कार र आता है।

हम नहीं कह सकते कि इन सारे इंसानों ने झूठ कहा है, जबकि हम उनकी गी में झूठ और धोखे का कोई चिन्ह नहीं देखते और न यह कह सकते हैं वे धोखा खा गए या उन पर जादू चल गया, क्योंकि वे समय के सबसे मान, दूरदर्शी एवं होशियार इंसान नज़र आते हैं। उनकी एक-एक अदा ती है कि उन्होंने न तो धोखा खाया और न उन पर जादू किया गया।

ान की परीक्षा

जब इस ब्रह्माण्ड में एक ऐसी सामर्थ्यवान हस्ती है जिसका आदेश हर चीज़

पर चल रहा है, तो इंसान को भी उसका आज्ञापालक होना चाहिए। आसमान एवं ज़मीन, सूरज एवं चांद जिसके आदेश के अधीन कार्यरत हैं अनिवार्य है कि इंसान भी उसकी सत्ता के अधीन हो, परन्तु इंसान आज़ाद है। वह अपने और इस ब्रह्माण्ड के रचयिता को स्वीकार भी करता है और इनकार भी करता है, उसकी आज्ञा का पालक भी है और उसकी अवज्ञा की भी छूट उसे है। यह क्यों ?

इसका जवाब इस्लाम ने यह दिया है कि यहां इंसान की मूल हैसियत (प्रकृति) की परीक्षा हो रही है कि वह इस पर बाक़ी रहता है या इससे भटकता है ? अपने रचयिता एवं प्रभु की ग़ुलामी करता है या उसका बाग़ी और नाफ़रमान बनता है ? इस उद्देश्य के लिए आवश्यक था कि उसे किसी पत्थर की भांति गाड़ न दिया जाता और न हरकत करने वाली मशीन बना दिया जाता बल्कि उसे अपेक्षित और अनपेक्षित दोनों प्रकार के आचरण के लिए समान रूप से स्वतंत्रता दी जाती, क्योंकि स्वतंत्रता ही वह माध्यम है, जिससे किसी चीज़ की परीक्षा हो सकती है। इंसान के अतिरिक्त इस ब्रह्माण्ड की अन्य सभी चीज़ें अपने रचयिता के आदेश के अधीन हैं और उसके आदेश से नाममात्र को भी विचलित नहीं हो सकतीं, इसलिए उनकी परीक्षा भी नहीं है।

इस उद्देश्य के लिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को इंसान के परीक्षा-स्थल में बदल दिया गया है। उसे इस प्रकार बनाया गया है कि इंसान अपनी इच्छा के अनुसार इसका उपयोग कर सकता है। ज़मीन पर उगने वाले अनाज से ऊर्जा एवं शक्ति प्राप्त कर वह अपने प्रभु एवं मालिक का आज्ञापालक एवं ग़ुलाम बन सकता है और उसी ऊर्जा एवं शक्ति को उसकी बग़ावत में भी लगा सकता है। सूरज की गर्मी से अल्लाह के नेक बंदे भी लाभांवित होते हैं और बुरे भी। इस दुनिया में जो कारक एवं संसाधन फैलाए गए हैं उनका उपयोग कर एक अपराधी भी सफल हो सकता है और वह भी जिसने कोई अपराध न किया हो। ऐसा नहीं है कि सही मक़सद ही के लिए वे काम आएं और ग़लत मक़सद के लिए काम न आएं।

जिस प्रकार किसी सल्तनत का बादशाह उन पदाधिकारियों को तुरंत ्च्युत कर देता है और उन्हें कठोर दण्ड देता है जो उसकी सल्तनत में उसकी छा के विपरीत कार्य करते हैं, उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड का वास्तविक प्रभु ान के ग़लत कामों पर तुरंत उनसे ज़वाब-तलब तो नहीं करता और न उसके ी आचरण पर तुरन्त पुरस्कार ही प्रदान करता है ।

स्कार एवं दण्ड

परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि इंसान को उसके आचरण का बदला ं मिलेगा । अल्लाह के फ़रमांबरदार और नाफ़रमान, आज्ञापालक और बाग़ी का अंजाम एक रहेगा और ऐसा नहीं है कि वे अपने कर्मों के परिणामों को ं भुगतेंगे । क्योंकि कर्मानुसार पुरस्कार या दण्ड का न मिलना इस ब्रह्माण्ड प्रकृति के विरुद्ध है, ब्रह्माण्ड के प्रभु की परिकल्पना के विरुद्ध है और जिस श्य के लिए इंसान पैदा किया गया है उस उद्देश्य के विरुद्ध है ।

जिस ब्रह्माण्ड का एक-एक कण अपने अन्दर विशेषता रखता है, क्या उसमें न के कर्म ही ऐसे हैं जिनमें कोई विशेषता नहीं ? आग में गर्मी और पानी में क है, तो क्या इनसे अधिक प्रभावशाली कर्म विशेषताओं से ख़ाली होंगे ? न में जो दाने फेंक दिए जाते हैं जब वे बेकार नहीं जाते तो क्या वे क्रियाएं े इंसान दिन-रात करता रहता है, बेकार चली जाएंगी ? इंसान रास्ता चलते ठोकर खाता है और दर्द महसूस करता है, यदि वह तलवार चला कर किसी ार को तबाह कर दे तो क्या उसके इस अत्याचार का कोई परिणाम न ा ? यदि वर्षा की बूंदों से ज़मीन लहलहा उठती है तो क्या इंसान के वे कार्य से दुनिया में सुख-शान्ति, सुकून एवं राहत फैले, वे निरर्थक ही रहेंगे ? ऐसा हीं सकता । प्रत्येक कार्य का परिणाम नियत है । लेकिन परिणाम के सामने का समय यह नहीं है । जिस प्रकार एक छोटे-से दाने में एक पूरा पेड़ छुपा है और वह अपने प्रकट होने के लिए इस बात का मुहताज है कि उसे न में गाड़ा जाए, उसी प्रकार इंसान के कार्यकलापों में छुपे हुए अच्छे और

बुरे परिणाम उस समय प्रकट होंगे, जबकि परीक्षा की अवधि समाप्त होगी। उस दिन ब्रह्माण्ड का रचयिता अल्लाह अपनी अदालत स्थापित करेगा और जिस उद्देश्य के लिए उसने इंसानों को कर्म की स्वतंत्रता दे रखी थी, उसे ज़िन्होंने पूरा किया होगा उन्हें पुरस्कार एवं सम्मान प्रदान करेगा और जो उस उद्देश्य को हानि पहुंचाने वाले होंगे उनसे उनके किए का बदल लेगा।

यदि वह दिन न आए जिसमें इंसानों के आचरण का हिसाब होगा तो यह मानना पड़ेगा कि इंसानों के रचयिता को उनकी नेकी और बदी से कोई दिलचस्पी नहीं, उसकी निगाह में बुरे और भले एक समान हैं और वह झूठ एवं सत्य दोनों को जायज़ समझता है। परन्तु जब हम काले एवं सफ़ेद तथा खरे एवं खोटे को एक नहीं समझते तो ब्रह्माण्ड का रचयिता अत्याचार एवं न्याय, नेकी एवं बदी और सदाचार एवं दुराचार को कैसे एक मान सकता है? फिर यह बात उसकी असीम दूरदर्शिता के भी विरुद्ध है कि वह इंसान को आज़ाद छोड़ रखे और उसके आचरण एवं कार्यकलाप का हिसाब न ले। अतः बुद्धि कहती है कि इंसान को आचरण की स्वतंत्रता देने वाला उसके कामों मे उदासीन नहीं रह सकता।

रिसालत

जज़ा (पुरस्कार) और सज़ा एवं जवाबदेही के लिए आवश्यक है कि इंसान के समक्ष सत्य एवं असत्य तथा ग़लत एवं सही बिल्कुल स्पष्ट हो जाए ताकि यदि वह सत्य एवं वास्तविकता को स्वीकार करना चाहे तो कोई रुकावट न रहे और अज्ञानता एवं नादानी से वह कोई ग़लत काम न कर सके। जब तक यह नहीं मालूम हो कि किस राह चल कर सफलता प्राप्त की जा सकती है और असफलता का मार्ग कौन-सा है, उस समय तक परीक्षा हो ही नहीं सकती। किसी को अंधकार में खड़ा करके हम यह नहीं कह सकते कि पूरब की ओर जाओ, पश्चिम की ओर न जाओ और न किसी अंधे से ही इसकी अपेक्षा की जा सकती है।

इस उद्देश्य के लिए इंसानों में रसूल (संदेशवाहक) आते हैं। वे इस ब्रह्माण्ड के रचयिता (अल्लाह) के प्रतिनिधि होते हैं, वे इंसानों को बताते हैं कि उनके स्रष्टा की इच्छा क्या है, किस काम से उसने रोका है? उनके लिए सही मार्ग कौन-सा है और ग़लत कौन-सा? सत्य क्या है और असत्य क्या, जो व्यक्ति उनकी बात माने और उनके पद-चिह्नों का अनुसरण करे वह ख़ुदा की इच्छा पूरी करेगा और उसके पुरस्कार का हक़दार होगा। जो उनके बताए हुए मार्ग को छोड़ेगा, उस पर ख़ुदा का कोप होगा और वह अत्यन्त कठोर दण्ड का भागी होगा। यह इंसान का अपना काम है कि वह रसूल को पहचाने और उसके बताए हुए मार्ग पर चले। ब्रह्माण्ड का रचयिता (अल्लाह) ज़मीन पर आकर यह एलान नहीं करता कि अमुक व्यक्ति उसका रसूल है। हां, रसूल अपने रसूल होने का प्रमाण पेश करते हैं। जिस प्रकार इस ब्रह्माण्ड को देखकर हम उसके रचयिता को स्वीकार करते हैं ठीक उसी प्रकार रसूल के आचरण एवं गुणों को देख कर यह मानने पर विवश हो जाते हैं कि वह अल्लाह का रसूल ही है।

कोई व्यक्ति स्वयं को अल्लाह का रसूल बताता है तो उसके लिए ज़रूरी है कि वह निश्चित रूप से बताए कि यह ब्रह्माण्ड क्या है? यह कैसे अस्तित्व में आया? कैसे चल रहा है? इसका उद्देश्य क्या है? इंसान क्या है, उसकी हैसियत क्या है? उसे क्या करना है और उसका अंजाम क्या होने वाला है? क्योंकि ये ही वे प्रश्न हैं जिनका उत्तर देने के लिए अल्लाह की ओर से रसूल दुनिया में भेजे जाते हैं, परन्तु ज़रूरी है कि उसकी शिक्षाएं ज्ञान एवं बुद्धि की कसौटी पर खरी उतरती हों। वह कोई ऐसा दावा न करे जो किसी वास्तविकता के विपरीत हो। अनुभव और अवलोकन से जो ग़लत साबित हो। क्योंकि ब्रह्माण्ड के रचयिता (अल्लाह) का रसूल (संदेशवाहक) ब्रह्माण्ड की किसी वास्तविकता से अनभिज्ञ नहीं रह सकता। वह वे बातें भी जानता है, जिन्हें जानने का आम इंसानों के पास कोई साधन नहीं है।

रसूल के रसूल होने का दूसरा सबसे बड़ा प्रमाण यह होता है कि वह बुराई और अशान्ति न फैलाए, वह अपनी ज़ुबान एवं व्यवहार से भलाई की ओर लोगों

को बुलाए, क्योंकि बुराई एवं अशान्ति फैलाने वाला ब्रह्माण्ड के रचयिता अल्लाह का बाग़ी और अवज्ञाकारी तो हो सकता है, उसका प्रतिनिधि एवं प्रवक्ता नहीं हो सकता। इस ज़मीन का पैदा करने वाला कभी यह पसंद नहीं कर सकता कि इस पर अशान्ति एवं बुराई फैले। वह इसमें भलाई एवं शान्ति देखना चाहता है।

तीसरा प्रमाण यह होता है कि उसके समक्ष इंसानों को उनके रचयिता का संदेश पहुंचाने के अतिरिक्त कोई अन्य स्वार्थ न हो और वह कोई तुच्छ एवं घटिया उद्देश्य लेकर न खड़ा हो। उसके साथ दिन-रात रहने वाले और वे लोग जिनमें वह पैदा हुआ, बढ़ा, उस पर यह आरोप न लगाएं कि वह धोखेबाज़, मिथ्याचारी अथवा झूठा है और रिसालत का नाम लेकर अपनी दुनिया बनाना चाहता है। उस पर किसी प्रकार की नैतिक हीनता का आरोप न लगाया जाए, क्योंकि रिसालत एक महान ज़िम्मेदारी का काम है। इतना महान कि इस ब्रह्माण्ड के अन्दर इससे बड़ी महानता की कल्पना नहीं की जा सकती। इस महान ज़िम्मेदारी की योग्यता के लिए उच्च एवं श्रेष्ठ गुणों का पाया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

चौथा प्रमाण यह होता है कि हर व्यक्ति के अन्दर अपने रचयिता को पहचानने की योग्यता एवं भावना है। वह प्राकृतिक रूप से इस बात का संक्षिप्त ज्ञान रखता है कि ब्रह्माण्ड के रचयिता से निकटता एवं सामीप्य के क्या संकेत हैं और जो इंसान अपने रचयिता के समीप हो उसके अन्दर किन गुणों का होना आवश्यक है? अतः आप देखेंगे कि सदियों से इंसानों का उन मूलभूत गुणों पर मतैक्य है जो अल्लाह के किसी विशेष और नेक बंदों के अन्दर होने चाहिएं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अनुमान कर सकता है कि जो व्यक्ति अल्लाह का रसूल होने का दावा करता है, वह वास्तव में अल्लाह का रसूल है या नहीं? उसके अन्दर वे गुण पाए जाते हैं या नहीं जो अल्लाह के नेक बन्दों में पाए जाने चाहिएं?

दुनिया में जितने पैग़म्बर (संदेशवाहक) आए, सब इन कसौटियों पर पूरे

उतरते थे। उन्होंने पूर्ण सहमति से एक ऐसी हस्ती को स्वीकार किया जो सारी शक्तियों एवं सामर्थ्य का स्रोत है, जो इस ब्रह्माण्ड का रचयिता, प्रभु और व्यवस्था करने वाला है। ब्रह्माण्ड की इस व्याख्या पर उन तमाम पैग़म्बरों का मतैक्य साफ़ बताता है कि उन्हें सीधे तौर पर ब्रह्माण्ड के रचयिता की ओर से ये जानकारियां मिल रही हैं, क्योंकि आज तक सिवाय पैग़म्बरों के इंसानों का इतना बड़ा वर्ग किसी अदृश्य वास्तविकता पर सहमत नहीं हुआ और फिर पैग़म्बरों ने नैतिकता एवं नेकी की जो शिक्षाएं पेश कीं उनके विषय में कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि वे बुराई एवं अशान्ति का ज़रिया हैं, क्योंकि जब भी उनका परीक्षण किया गया, अच्छे परिणाम सामने आए और इंसानों को सुख-चैन एवं शान्ति प्राप्त हुई। इन शिक्षाओं को अल्लाह के पैग़म्बरों ने दुनिया के सामने पेश ही नहीं किया, बल्कि सबसे पहले और सबसे ज़्यादा उन पर अमल किया। वे उन शिक्षाओं के मूर्त रूप थे। उनके शत्रु भी उनकी नेकी और भलाई को मानते थे। किसी ने उन पर किसी नैतिक अपराध का आरोप नहीं लगाया। इससे पता चलता है कि वे अपने मिशन के प्रति निष्ठावान थे और गंभीरतापूर्वक अपनी और दूसरों की भलाई इसी मिशन में देखते थे।

आख़िरी रसूल

इन्हीं गुणों एवं विशेषताओं के साथ छठी सदी ईसवी में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने अपने रसूल होने का एलान किया और दावा किया कि इस ब्रह्माण्ड का एक रचयिता एवं प्रभु है। उसी के आदेश से यह ज़मीन एवं आसमान क़ायम हैं। उसी के हाथ में दिन एवं रात के आने-जाने का चक्र है। वही जीवन एवं मृत्यु का मालिक है, वही सेहत एवं तंदुरुस्ती प्रदान करता और रोग से ग्रसित करता है। संक्षेप में यह कि इस ब्रह्माण्ड में केवल उसी का आदेश चल रहा है, उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई पलक भी नहीं झपका सकता। मुहम्मद (सल्ल०) ने अपने इस दावे के सबूत में ब्रह्माण्ड की एक-एक चीज़ पेश की और इंसानों को समझाया कि वे उसी की बंदगी एवं गुलामी स्वीकार करें और जो

कुछ मांगना हो उसी से मांगें, क्योंकि वही इबादत (उपासना) का अधिकार रखता है और अपने बंदों की मुरादें (मनोकामनाएं) पूरी करने वाला है।

नीचे हम मुहम्मद (सल्ल०) की शिक्षाओं का एक छोटा-सा नमूना क़ुरआन से उद्धृत करते हैं ——

"हमने आसमान और ज़मीन को और जो कुछ उनके बीच में है, उसे खेल के रूप में नहीं बनाया है। यदि हम कोई खिलौना बनाना चाहते और बस यही कुछ हमें करना होता तो अपने ही पास से ऐसा कर लेते। बल्कि हम सत्य को असत्य पर फेंक मारते हैं, वह उसका सिर तोड़ देता है। फिर अचानक बातिल मिट जाता है। तबाही है तुम्हारे लिए उन बातों में जो तुम बयान करते हो। उसी के लिए हैं आसमानों और ज़मीन की सारी चीज़ें और जो उसके पास हैं, वे उसकी इबादत से न तो सरकशी करते हैं और न सुस्ती। रात और दिन उसकी तसबीह (गुणगान) करते हैं और थकते नहीं। क्या उन इनकार करने वालों ने ज़मीन में से अपने लिए इष्ट-पूज्य बना लिए हैं, जो उन्हें क़ब्रों से उठाएंगे? यदि आसमान और ज़मीन के अन्दर अल्लाह के अतिरिक्त बहुत-से इष्ट-पूज्य होते तो (धरती और आकाश) दोनों की व्यवस्था बिगड़ जाती। अतः पाक है अल्लाह, अर्श (सिंहासन) का मालिक उन बातों से जो ये करते हैं और जो कुछ वह करता है उसके सम्बन्ध में उससे सवाल नहीं किया जाता, बल्कि ये अपने आमाल (क्रियाकलापों) के बारे में पूछे जाएंगे। क्या उन्होंने सिवाए अल्लाह के बहुत-से इष्ट पूज्य बना लिए हैं। कहो इनसे कि वे अपना प्रमाण लाएं। यह ज़िक्र है उन लोगों का जो मेरे साथ हैं और उन लोगों का जो मुझसे पहले गुज़र चुके हैं, परन्तु इन में से अधिकतर हक़ (सच्चाई) को नहीं जानते और वे इस से मुंह मोड़े हुए हैं। हमने तुमसे पहले जिस रसूल को भी भेजा उसकी ओर यह वह्य की कि मेरे सिवा कोई इष्ट पूज्य नहीं है, अतः तुम मेरी बंदगी करो। ये लोग कहते हैं कि रहमान (अल्लाह) ने अपनी

औलाद बना रखी है । पाक है अल्लाह ; वे (अर्थात् फ़रिश्ते) तो उसके प्रिय बंदे हैं, वे बात में उससे आगे नहीं बढ़ते और उसके आदेश के अनुसार काम करते हैं । अल्लाह जानता है उन सारी चीज़ों को जो उनके आगे हैं और जो उनके पीछे हैं । ये फ़रिश्ते सिवाए उसके किसी की सिफ़ारिश नहीं करते जिससे अल्लाह राज़ी हो और वे उससे डरते रहते हैं । उनमें से जो भी यह दावा करेगा कि अल्लाह के सिवा मैं भी एक ईश हूँ, तो हम उसकी इस बात पर उसको जहन्नम का बदला देंगे । हम ज़ालिमों को ऐसे ही बदला देते हैं ।" –21: 16-29

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने एक स्रष्टा और स्वामी की बन्दगी की जो शिक्षा दी उसके आधार पर ज़िंदगी का पूरा नक़्शा पेश किया । बन्दगी के तरीक़े तथा पारस्परिक सम्बन्धों के उसूल बताए, क़ानून एंव क़ानून के उल्लंघन पर दण्ड निश्चित किए । उठने, बैठने, बोलने, लिखने, खाने-पीने और सोने-जागने के आचार सिखाए । पूरी ज़िंदगी को अल्लाह का आज्ञापालक बना दिया और अल्लाह एवं बंदे के सम्बन्ध को इस प्रकार मज़बूत किया कि किसी क्षेत्र और किसी स्थिति में उसे कमज़ोर होने नहीं दिया ।

यह ठीक वही शिक्षा है जो बीते ज़मानों में दूसरे रसूल देते रहे । इससे स्पष्ट है कि मुहम्मद (सल्ल०) के ज्ञान का स्रोत भी वही है, जो दूसरे रसूलों के ज्ञान का स्रोत था । अन्यथा यह असम्भव है कि एक ऐसा व्यक्ति जो दुनिया के दर्शनों और ज्ञानों से बिल्कुल अनभिज्ञ था, जो लिखना-पढ़ना नहीं जानता था और जिसने आलिमों एवं विद्वानों की संगति में जीवन व्यतीत नहीं किया, यहां तक कि कभी किसी विद्वान से मुलाक़ात तक नहीं की, वह ठीक-ठीक वही बातें कहे जो सदियों पहले दूसरे रसूल कहते रहे हैं ।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने बिना किसी पूर्व ज्ञान एवं अध्ययन के अचानक ख़ुदा की बंदगी की दावत दी और इस विश्वास के साथ दी कि आपकी ज़िन्दगी की एक-एक अदा से यह विश्वास झलकता था । आप (सल्ल०) के दुश्मनों ने आपको बड़ी-बड़ी तकलीफ़ें पहुंचाईं । हर तरह सताया, भूखा रहने पर विवश

किया, गालियां दीं, पत्थर मारे यहां तक कि देश छोड़ने पर मजबूर किया। परन्तु आपकी आस्था एवं विश्वास में नाम मात्र को भी कमी नहीं आई, बल्कि उसमें वृद्धि ही होती रही। आप (सल्ल०) जिस ख़ुदा की ओर दुनिया को बुला रहे थे उसी ख़ुदा से हर मामले में मदद मांगते, बिल्कुल फ़क़ीरों और मुहताजों की तरह उसके सामने हाथ फैलाते। रो-रोकर उस से अपनी मुरादें मांगते। आपको कई बार ऐसी स्थिति में भी देखा गया कि रात की तनहाई है और आप (सल्ल०) अपने रब के आगे हाथ फैलाए उसकी यातना से पनाह मांग रहे हैं और उसकी दया की भिक्षा चाह रहे हैं। आपको देखने वाली हर आंख गवाही देती कि आप एक ऐसी हस्ती पर आस्था रखते हैं, जो इस ब्रह्माण्ड का रचयिता एवं प्रभु तथा प्रशासक है और स्वयं को उसके मुक़ाबले में अति बेबस, तुच्छ एवं विवश पा रहे हैं।

हम नहीं कह सकते कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने अपनी दुनिया बनाने के लिए यह स्वांग रचाया, क्योंकि दुनिया ने देखा है कि सारे अरब पर अधिपत्य के बावजूद आप (सल्ल०) ने एक निर्धन फ़क़ीर की ज़िंदगी गुज़ार दी। ऐश-आराम के साधन होते हुए भी सादा जीवन व्यतीत करने को प्रधानता दी। इस बात को भी पसंद नहीं किया कि बोरिया आदि को छोड़ कर किसी गद्देदार बिस्तर पर आराम करें। जब आपके साथियों ने आपके लिए नर्म बिस्तर तैयार करने की इच्छा प्रकट की तो जवाब दिया, "यह दुनिया और मैं ! मुझे इस दुनिया से क्या लेना ? मैं इस दुनिया में एक मुसाफ़िर हूँ। जिस प्रकार मुसाफ़िर किसी छाया के नीचे कुछ देर आराम के लिए ठहर जाता है, परन्तु उसे अपनी मंज़िल नहीं समझता, उसी प्रकार यह दुनिया मेरी मंज़िल नहीं है।"

हम यह भी नहीं कह सकते कि आप (सल्ल०) अपने दावे में झूठे थे, क्योंकि आपके दुश्मनों तक ने भी आपके सच्चे होने की पुष्टि की है। जो व्यक्ति जीवन के किसी भी क्षेत्र में झूठा साबित न हुआ हो, एक विशेष मामले में हम उस पर झूठ बोलने का आरोप लगाएं तो यह कितना बड़ा ज़ुल्म होगा, जबकि हमारे पास कोई तर्क और प्रमाण भी नहीं है। यदि उसके तर्कों और प्रमाणों से

हम संतुष्ट न हों तो अधिक से अधिक यह कह सकते हैं कि उसकी बात हमारी समझ में नहीं आती।

फिर यह भी एक वास्तविकता है कि कोई झूठा अधिक समय तक अपनी बात पर जमा नहीं रह सकता, परन्तु हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पूरे 23 वर्ष तक एक ही बात दुहराते रहे और उसके विरुद्ध कभी कोई बात आपकी ज़ुबान से नहीं निकली। आपके निकट जैसे बलिदानी और निष्ठावान व्यक्ति जमा थे, ऐसे महान व्यक्तियों का किसी झूठे व्यक्ति के पास जमा होना एक असंभव बात है। वे आपसे एक ऐसी हस्ती की इच्छा पूछते थे, जिसे वे स्वयं नहीं देख सकते थे और जब आप (सल्ल०) उस की इच्छा बताते तो उन्हें न अपना माल क़ुरबान करने में संकोच होता और न अपनी जान। वे आपके इशारों पर दौड़ पड़ते थे और हर उस बात पर विश्वास रखते थे जो आपकी ज़ुबान से निकलती थी। क्या किसी झूठे व्यक्ति के साथ उसके अनुयायियों का कभी यह सलूक रहा है?

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने ऐसे अनुयायियों की एक जमाअत तैयार की और अल्लाह की ओर से उतारी हुई किताब उनके हवाले की और यह एलान कर दिया कि रिसालत (ईश-दूतत्व) का सिलसिला अब समाप्त हो गया। पैग़म्बरी की इमारत में वह अन्तिम ईंट रख दी गई जिसकी जगह ख़ाली थी। अब क़ियामत तक आप (सल्ल०) पर उतारी गई किताब ही पर अमल होगा।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को अल्लाह का रसूल स्वीकार करने के बाद कोई कारण नहीं कि रिसालत की समाप्ति के आपके दावे को स्वीकार न किया जाए। विशेषकर ऐसी स्थिति में जबकि वह किताब जो आपने दुनिया के सामने पेश की, साफ़ गवाही दे रही है कि जिस उद्देश्य के लिए रसूल दुनिया में आते थे वह उद्देश्य पूरा हो गया। अब उनके आने की कोई ज़रूरत नहीं रही, क्योंकि इस किताब में क़ियामत तक के लिए अमर उसूल मौजूद हैं।

मानव-सम्बन्ध

मतभेद और विवाद

यदि अतीत, वर्तमान और भविष्य के सारे इंसान किसी जगह इकट्ठे किए जाएं और उनसे उनकी भावनाओं, अनुभूतियों और उनकी ज़रूरतों के विषय में प्रश्न पूछे जाएं, तो सबके उत्तर एक जैसे होंगे। कोई व्यक्ति ऐसा नहीं निकलेगा जो ख़ुशी और ग़म की भावनाओं एवं स्वभाविक मांगों से ख़ाली हो या उसकी भावनाएं दूसरों की भावनाओं से और उसकी स्वाभाविक मांगें दूसरों की स्वाभाविक मांगों से भिन्न हों। परन्तु इसके बाद भी इंसान विभिन्न वर्गों एव गिरोहों में बटे हुए हैं और हर वर्ग दूसरे वर्ग से संघर्षरत है, मानो हर गिरोह और हर व्यक्ति का स्वभाव भिन्न और उनकी ज़रूरतें अलग-अलग हैं। एशिया का रहने वाला अपनी ज़िंदगी के लिए जिन चीज़ों का मुहताज है यूरोप और अमेरिका का रहने वाला उन्हें नहीं चाहता, रोम-वासियों की जो भावनाएं एवं अनुभूतियां हैं यूनानी उनसे अलग भावनाएं एवं अनुभूतियां रखते हैं।

जब स्थिति यह है कि तमाम इंसान अपनी भावनाओं, हितों और ज़रूरत के आधार पर एक समान हैं तो वह कौन-सी चीज़ है, जो उन्हें संघर्ष और टकराव की ओर ले जाती है? इसका उत्तर यह है कि इंसान वाह्य दुनिया में किसी ऐसे उद्देश्य की तलाश में है जिसके गिर्द अपना जीवन घुमा दे। जिस पर अपनी जान, माल और समय को क़ुरबान करे। ऐसे किसी उद्देश्य के बिना उसे चैन नहीं आ सकता, बल्कि वह जीवित नहीं रह सकता। लेकिन इस उद्देश्य की प्राप्ति कैसे हो, इसमें इंसान एकमत नहीं है।

जीवन के ग़लत उद्देश्य

किसी ने कहा, इंसान की ज़िंदगी का उद्देश्य परिवार और समुदाय की सेवा करना है। समुदाय की रक्षा, उसका समर्थन एवं सहयोग और उसके हित के

लिए संघर्ष इंसान का परम कर्त्तव्य है, क्योंकि परिवार और समुदाय में ही इंसान का लालन-पालन होता है, वह उसे अस्तित्व देता और दौड़-धूप के योग्य बनाता है। उसकी सारी शक्ति और योग्यता समुदाय के उपकार का प्रतिफल होती हैं, इसलिए इन शक्तियों का सबसे अच्छा उपयोग भी समुदाय की सेवा ही हो सकती है। वह इंसान सफल है जिसकी शक्तियां एवं योग्यताएं अपने समुदाय के काम आएं।

इसका उत्तर यह दिया गया कि इंसान की शक्तियों और योग्यताओं को अकेला वह समुदाय नहीं उभारता जिसमें वह पैदा हुआ, बल्कि उसकी उन्नति एवं विकास में बहुत-से परिवार और समुदाय शरीक होते हैं, इसलिए यह सही न होगा कि इंसान केवल अपने समुदाय के बारे में सोचे और उसी के हित के लिए सब कुछ करे। उसकी सेवाओं और बलिदानों का दायरा केवल उसके अपने परिवार और समुदाय तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे विस्तृत रखने की ज़रूरत है। इस विस्तृत दायरे में वे सभी परिवार और समुदाय आने चाहिएं जो एक भाषा बोलते हैं, क्योंकि भाषा ही विभिन्न समुदायों को जोड़ने का प्रमुख माध्यम है। इसी से विचारों में साझेदारी पैदा होती है और समुदाय और परिवार एक-दूसरे के निकट आते हैं।

भाषा या ज़ुबान का दायरा भी कुछ सौ या कुछ हज़ार मील की दूरी पर समाप्त हो जाता है, परन्तु इंसान की ज़रूरतें और हित दूर-दूर तक फैले हुए हैं। उनका दायरा ज़ुबान के दायरे से अधिक विस्तृत है। वह अपनी ज़िंदगी गुज़ारने के लिए ऐसे व्यक्तियों एवं ऐसे समुदायों से भी सम्बन्ध रखने पर विवश है, जिनकी भाषा उसकी भाषा से भिन्न होती है, इसलिए कहा गया कि इंसान के आर्थिक एवं सामाजिक हित आमतौर पर ज़मीन के उस भाग तक फैले हुए होते हैं, जिसे प्राकृतिक रूप से पहाड़ों, नदियों, उत्पादन के साधनों पानी, हवा और मौसम की साझेदारी ने एक कर दिया है। इंसान ज़मीन के उस पूरे भू-भाग से उसकी एक-एक चीज़ से फ़ायदा उठाता है, इसलिए इंसान का उद्देश्य उस पूरे भू-भाग की सेवा होनी चाहिए, चाहे उसमें कितनी ही भाषाएं बोली जाती हों और

कितनी ही क़ौमें और समुदाय उसमें बसते हों तथा कितने ही वर्ण एवं वंश के लोग उसमें निवास करते हों।

आज इस उद्देश्य को इंसान का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य समझा जाता है, इसके लिए जीना एवं मरना इसके निकट इंसानियत की पराकाष्ठा है। जो व्यक्ति इस उद्देश्य के लिए कुरबान हो जाए वह इस योग्य समझा जाता है कि उसकी यादगार मनाई जाए, उसके मरने के बाद उसकी तस्वीर के सामने श्रद्धा-पुष्प सजाए जाएं और उसका वर्णन इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में लिख दिया जाय।

जीवन के जो उद्देश्य ऊपर बयान किए गए हैं, वे इंसान को आपस में जोड़ने वाले नहीं, बल्कि तोड़ने वाले हैं क्योंकि उनमें से प्रत्येक उद्देश्य एक सीमित उद्देश्य है जो ख़ास-ख़ास वर्गों और गिरोहों के हितों के लिए वजूद में आया है। उनमें से कोई भी उद्देश्य इससे कोई मतलब नहीं रखता कि सारे इंसानों का हित किसमें है? यह एक हक़ीक़त है कि कोई सीमित उद्देश्य उस समय तक प्राप्त नहीं होता जब तक कि उससे बड़े उद्देश्य को हानि न पहुंचे। इसलिए किसी सीमित उद्देश्य के अधीन उन व्यक्तियों और क़ौमों का एकत्र होना असम्भव है, जिनके हित को उससे नुक़्सान पहुंचता है। यदि इंसान के जीवन का उद्देश्य कुछ विशेष पहाड़ों और नदियों के बीच सीमित हो तो इस उद्देश्य से उन इंसानों को क्या दिलचस्पी होगी जो इस परिधि से बाहर हैं और जो इन पहाड़ों एवं नदियों से लाभ नहीं उठाते? यदि किसी की दृष्टि अपने समभाषी व्यक्ति की हद तक जाकर रुक जाए तो दूसरी ज़बान वाले उससे क्यों सम्बन्ध रखें और प्रेम करें? इसी प्रकार यदि इंसान के प्रेम का केन्द्र उसकी अपनी क़ौम और समुदाय हो तो दूसरी क़ौमें क्यों **उससे** सम्बन्ध रखें जिनके लाभ एवं हानि से उसे कोई दिलचस्पी नहीं?

यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक संस्था और प्रत्येक क़ौम की श्रद्धा एवं प्रेम का केन्द्र भिन्न-भिन्न है और वह अपनी निज-इच्छा को सन्तुष्ट रखने के लिए दूसरे की निज-इच्छा की निंदा, अपमान और उसे पराजित करने में व्यस्त है। एशिया का रहने वाला, यूरोप से, वहां की क़ौमों और वहां की भाषाओं से

नफ़रत एवं द्वेष रखता है और यूरोप का रहने वाला एशिया की हर चीज़ को हीनता की दृष्टि से देखता है। अमेरिका का हृदय अफ्रीक़ा के लिए तंग है और अफ्रीक़ा अमेरिका से अप्रसन्न है।

इसके समाधान के लिए विश्वव्यापी मानव-समाज की परिकल्पना पेश की जाती है। यानी तमाम क़ौमें अपने साझा-हितों के प्रति संगठित हो जाएं और उनकी प्राप्ति के लिए मिल-जुल कर प्रयास करें। स्वयं भी जीवित रहें और दूसरों को भी जीवित रहने का अधिकार दें। परन्तु यह एक कल्पना मात्र है, व्यावहारिक रूप में इसका समर्थन नहीं होता। इंसान के हित उसकी सोच और दृष्टिकोण के अधीन होते हैं। इंसान संधि एवं युद्ध, मित्रता एवं शत्रुता के सारे मामले दृष्टिकोण के आधार पर ही करता है। दृष्टिकोण में यदि विरोधाभास है तो हित भी कभी एक नहीं हो सकते। जो व्यक्ति कम्युनिज़्म को मानता हो, पूंजीवाद की ओर सुलह का हाथ बढ़ाना उसके लिए असंभव है। राष्ट्रवादी मानसिकता अराष्ट्रवादी मानसिकता की उन्नति को सहन नहीं कर सकती। विचार-भिन्नता का इतिहास बताता है कि इससे इंसानों के बीच सदैव विवाद और लड़ाई रही है। आज यही चीज़ प्रेम एवं स्नेह का साधन बन जाए, यह असम्भव है।

प्रश्न यह है कि जिस भू-भाग से इंसान को लाभ नहीं प्राप्त होता, जिस क़ौम की आस्थाएं एवं दृष्टिकोण उसकी आस्थाओं एवं दृष्टिकोणों से भिन्न हों, जो भाषा उसकी भाषा से मेल न खाती हो, उससे वह क्यों प्रेम करे? यह ऐसा स्वाभाविक प्रश्न है कि इसे रद्द नहीं किया जा सकता और विश्व-व्यापी मानव-समुदाय की परिकल्पना पेश करने वाले भी अब तक इसका जवाब नहीं दे सके हैं।

उचित दृष्टिकोण

इस्लाम तमाम इंसानों को एक समान क़रार देता है और सबके जीवन का उद्देश्य भी एक ही निश्चित करता है, क्योंकि सबका रचयिता और प्रभु एक है।

उसने भारतीय के लिए अलग और चीनी के लिए अलग, रूसी के लिए अलग और अमेरिकी के लिए अलग उद्देश्य क़रार नहीं दिया, बल्कि इंसानों के पैदा करने वाले ने ज़मीन पर बसने वाले प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक गिरोह से उसकी बंदगी करने को कहा है। इस उद्देश्य के विषय में न तो अजमी (ग़ैर-अरब) यह कह सकते हैं कि यह केवल अरबों के लिए है और न अरब इसे अजमियों का उद्देश्य कह सकते हैं। इसमें प्रत्येक वर्ग एवं वंश और प्रत्येक भू-भाग के इंसानों के लिए आकर्षण पाया जाता है। अपने रचयिता एवं प्रभु और अपने उपकारक की ओर बढ़ना तथा उससे निकट होना इंसान का स्वभाव है, क्योंकि पग-पग पर वह उसकी ओर उन्मुख होने और उसके दामन में पनाह लेने को विवश है। कठिनाइयों में वह उसका सहारा ढूंढता है और ख़ुशियों में उसके उपकार की कृतज्ञता प्रकट करता है, इसलिए यह सारे इंसानों का उद्देश्य है। उसको अपनाने में प्रत्येक का अपना व्यक्तिगत लाभ है और उसको ठुकराने में अपनी व्यक्तिगत हानि।

और फिर अल्लाह की कोई ज़ात-बिरादरी नहीं। उसका कोई ख़ानदान और क़बीला नहीं। उसका अस्तित्व किसी भू-भाग में सीमित नहीं। वह हर जगह मौजूद है और हर एक को देखता, उसकी फ़रियाद सुनता है और मदद करता है। उससे प्रत्येक इंसान अपना रिश्ता जोड़ सकता है। गोरा, काला, मज़दूर, मालिक, किसान, व्यापारी, पढ़ने वाला, पढ़ाने वाला, शासक और शासित सभी उससे अपना रिश्ता जोड़ सकते हैं। सब उसकी निगाह में समान हैं। सब उसकी ओर बढ़ सकते हैं और उसका सामीप्य एवं प्रेम चाह सकते हैं। कोई व्यक्ति न तो अपने गोत्र और कुल के आधार पर उसके पास उच्च स्थान प्राप्त कर सकता है और न ही कोई सम्मान एवं पद। उस तक पहुंचने में बदहाली और निर्धनता न तो रुकावट बनती है और न ख़ुशहाली एवं सम्पन्नता सहायक। वह हर उस व्यक्ति को आगे बढ़ कर लेने को तैयार है जो उसकी ओर बढ़े। चाहे वह अफ्रीक़ा का हो या अमेरिका का, अंग्रेजी बोलता हो या अरबी। सम्मान एवं प्रतिष्ठा उसके निकट उस व्यक्ति के लिए है जो अपने आपको उसकी दासता

में लगा दे। उसकी यातना से डरे और उसकी रहमतों को प्राप्त करने के लिए तड़प रखे।

इसी परिप्रेक्ष्य में क़ुरआन में आया है :

"लोगो ! हमने तुमको एक मर्द और औरत से पैदा किया और तुम्हें विभिन्न ज़ातों और क़बीलों में बांट दिया, ताकि तुम पहचाने जा सको। निस्संदेह अल्लाह की दृष्टि में तुम में सबसे अधिक प्रतिष्ठित वह है जो तुम में सबसे अधिक परहेज़गार हो। अल्लाह निस्संदेह सब कुछ जानता और खबर रखता है।" –49 : 13

जिन लोगों के हृदय अल्लाह के भय से ख़ाली हों और जो उसके आज्ञापालन से मुंह मोड़ें उन्हें उसकी यातना से न तो उनकी शानोशौकत बचा सकती है और न उनकी सत्ता और हुकूमत। इस ज़मीन पर कितनी ही क़ौमें और कितने ही व्यक्ति गुज़रे हैं जिन्हें अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य पर घमण्ड था, जिन्होंने ख़ुदा की गुलामी से इनकार किया और ज़मीन पर सरकश एवं विद्रोही बन कर रहे जिसके परिणामस्वरूप वे ज़मीन से अवांछनीय वस्तु की तरह मिटा दिए गए। अल्लाह के रसूल भी अल्लाह को इसलिए प्रिय होते हैं कि वे सबसे अधिक उसके आज्ञापालक एवं फ़रमांबरदार होते हैं। यदि वे उसके आज्ञापालन से मुंह मोड़ें तो उन्हें भी उसकी यातना से कहीं पनाह नहीं मिल सकती। मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के सबसे अधिक नेक बंदे थे परन्तु आपकी ज़बान से एलान कराते हुए क़ुरआन में कहा गया–

"यदि मैं अपने रब की अवज्ञा करूं तो मुझे बड़े दिन (क़ियामत) की यातना (अज़ाब) का डर है।" –6 : 15

यह इस बात का प्रमाण है कि अल्लाह की ज़मीन पर रहने वाले इंसानों में उसके पुरस्कार एवं सम्मान का अधिकार उन्हीं लोगों को है, जिनके दिलों में उसका डर (तक़्वा) हो। तक़्वा के अतिरिक्त दुनिया में कोई ऐसी चीज़ नहीं जो इंसान को ख़ुदा से निकट कर दे और उसकी पकड़ से बचाए। इंसानों के बीच वर्ण, वंश, भाषा, विचार, उद्योग-धंधे, राष्ट्रीयता एवं देश का जो अन्तर पाया

जाता है वह किसी की महानता अथवा हीनता का प्रमाण नहीं है, बल्कि प्रकृति की अन्य अनगिनत चिह्नों की तरह यह भी एक चिह्न है, जो बताता है कि इस ब्रह्माण्ड में वास्तविक अधिपत्य एवं सामर्थ्य अल्लाह को ही प्राप्त है। वह जिसे चाहता सुन्दर पैदा करता है और जिसे चाहता है कुरूप पैदा करता है। जिसे चाहता है धन-दौलत प्रदान करता है और जिसे चाहता है उससे वंचित कर देता है। जिसे जिस भू-भाग में चाहे पैदा करता है और जो भाषा चाहे सिखाता है। यदि कोई व्यक्ति इनमें से किसी चीज़ को अपनी महानता अथवा दूसरे की तुच्छता का प्रमाण समझता है, तो वह प्रकृति की एक बहुत बड़ी निशानी से सबक़ हासिल नहीं कर रहा है। वह उस निगाह से वंचित है जिसमें अल्लाह की निशानियों का अध्ययन करने की योग्यता होती है। इसी संदर्भ में क़ुरआन में आया है :

> "उसकी निशानियों में से एक यह है कि उसने तुम्हें मिट्टी से पैदा किया फिर तुम इंसान की शक्ल में ज़मीन पर फैल गए। यह भी उसकी निशानियों में से एक है कि उसने ख़ुद तुम्हारे अन्दर से तुम्हारे जोड़े पैदा किए, ताकि तुम उनसे सकून प्राप्त करो और उसने तुम्हारे बीच प्रेम एवं दया की मनोवृत्ति रख दी। निस्संदेह इसमें सोचने वालों के लिए निशानियां हैं। आसमानों और ज़मीन की रचना और तुम्हारी भाषाओं और वर्णों की भिन्नता भी उसकी निशानियों में से हैं। निस्सन्देह इसमें जानने वालों के लिए निशानियां हैं। उसकी निशानियों में से तुम्हारा रात को सोना और दिन में उसके फ़ज़्ल (आजीविका) को ढूंढना भी है। इसमें (हक़ीक़त को) मानने वालों के लिए निशानियां हैं।"
> —क़ुरआन 30 : 20-23

यह परिकल्पना इंसानों के बीच से हर प्रकार की संकीर्णता एवं भेद-भाव को समाप्त करती और उन्हें एक इकाई में तब्दील करती है। इसको मानने के बाद इंसान के अन्दर सम्मान और अपमान के झूठे भेद-भाव कभी उभर नहीं सकते। अल्लाह की बंदगी का एहसास ग़ुलाम और आक़ा, शासक एवं शासित,

राजा एवं प्रजा सबको एक पंक्ति में खड़ा कर देता है। इतिहास की यह एक दुःखद घटना है कि इंसानों के कल्याण एवं उन्नति के नाम पर स्वार्थ एवं स्वहित जैसी प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया गया। उन्हें गिरोहों और वर्गों में बांटा गया और उनके बीच विवाद एवं झगड़े के कारण पैदा किए गए। इस्लाम के सिवा दुनिया के हर दृष्टिकोण ने इंसान को इंसान का हमदर्द और सहानुभूति व्यक्त करने वाला नहीं बल्कि उसका प्रतिद्वंदी और शत्रु बनाया और उन्हें एक-दूसरे के मुक़ाबले में खड़ा किया है। इसके परिणामस्वरूप ख़ानदान एवं क़बीले तबाह हुए, वर्गीय विवाद उभरे और राष्ट्रों के झगड़े अस्तित्व में आए। हत्या एवं अत्याचार, लूटमार एवं बलात्कार के बाज़ार गर्म हुए। अत्याचार की एक दास्तान ख़त्म नहीं हुई कि दूसरी उससे भयानक दास्तान शुरू हो गई। हद तो यह कि इस अत्याचार एवं ज़ुल्म के लिए कभी-कभी तो इतनी बात काफ़ी समझ ली गई कि अमुक व्यक्ति का सम्बन्ध दूसरी क़ौम से है अथवा अमुक क़ौम वह भाषा नहीं बोलती, जो हम बोलते हैं अथवा उस भू-भाग से सम्बन्ध नहीं रखती जिससे हम रखते हैं। किसी भी देश और राष्ट्र पर आक्रमण के लिए जर्मनों ने यह तर्क काफ़ी समझा कि उसका सम्बन्ध जर्मन क़ौम से नहीं है। कोई ऐसा दृष्टिकोण आज तक नहीं पेश किया जा सका जो, ज़ुल्म एवं अत्याचार को समाप्त करने वाला हो, जिसकी बुनियाद इंसानियत के हर तबक़े के साथ न्याय पर हो और जो इंसानों को एक-दूसरे के भाई की हैसियत से सामने लाए। इसके लिए जब इस्लाम की ओर नज़र उठती है तो फिर किसी दूसरी ओर देखने की ज़रूरत महसूस नहीं होती।

अत्याचार एवं अन्याय का अंत

हक़ीक़त यह है कि ख़ुदा की ख़ुदाई में यक़ीन और उसकी बंदगी के एहसास ही से शोषण, लूट-खसोट, घृणा, शत्रुता, अत्याचार और अन्याय समाप्त होता है और उसकी जगह एक-दूसरे की शुभेच्छा, हमदर्दी और भाईचारे की मनोवृत्ति उभरती है, क्योंकि अल्लाह की बंदगी इंसानों से दो चीज़ों की मांग

करती है। एक यह कि वह अपनी भावनाओं एवं अनुभूतियों को उसकी भेंट चढ़ा दे, उसकी प्रशंसा एवं प्रार्थना करे, उसकी यादों में डूब जाए, उसके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो, अपना सिर झुका दे और नम्रता के साथ उसके दर पर गिर पड़े। इसका नाम इबादत है। ख़ुदा की बन्दगी दूसरी मांग यह करती है कि अपनी शक्तियों, योग्यताओं और अपनी तमाम प्रिय चीज़ों की कुरबानी पेश की जाए। उसका व्यावहारिक रूप ख़ुदा के बंदों की सेवा करना है। ख़ुदा के बन्दों की मदद करना ख़ुदा की मदद करना है। उनके काम आना ख़ुदा के काम आना है। यदि आपके समक्ष ख़ुदा का कोई बंदा हांथ फैलाए और आप उसे ख़ाली लौटा दें तो मानो आपने ख़ुदा के हाथ को ख़ाली लौटाया। कोई रोगी आपकी मदद का मुहताज हो यदि आपने उसकी मदद से इनकार कर दिया तो मानो ख़ुदा की मदद से इनकार कर दिया। ख़ुदा को ख़ुश करने के लिए ज़रूरी है कि ख़ुदा के बंदों को ख़ुश किया जाए। आसमान वाला उसी समय प्रसन्न होगा जब ज़मीन वाले प्रसन्न हों। इस हक़ीक़त को मुहम्मद (सल्ल०) ने एक वार्तालाप के रूप में अति प्रभावी एवं रोचक अंदाज़ में बयान किया है। क़ियामत के दिन अल्लाह इंसान को सम्बोधित करेगा—

"आदम की औलाद ! मैं बीमार पड़ा रहा, परन्तु तूने मेरी बीमारपुर्सी नहीं की ?"

इंसान कहेगा, "मेरे रब ! तू सारे जगत् का पालनहार है, मैं तेरी बीमारपुर्सी कैसे करता ?"

अल्लाह कहेगा, "क्या तुझे नहीं मालूम था कि मेरा अमुक बन्दा बीमार है ? परन्तु उसके बाद भी तू उसकी बीमारपुर्सी के लिए नहीं गया। यदि तू उसके पास जाता तो उसके पास मुझे पाता।"

अल्लाह कहेगा, "आदम की औलाद ! मैंने तुझ से खाना मांगा परन्तु तूने मुझे खाना नही दिया।"

इन्सान कहेगा, "हे रब ! तू तो सारे जगत् का पालनहार है। मैं तुझे कैसे खाना खिलाता ?"

अल्लाह कहेगा, "क्या तुझे याद नही कि मेरे अमुक बंदे ने तुझ से खाना मांगा था, परन्तु तूने नहीं खिलाया। क्या तुझे नहीं मालूम था कि यदि तू उसको खाना खिलाता तो आज उसका सवाब यहां पाता।"

अल्लाह कहेगा, "आदम की औलाद ! मैंने तुझ से पानी मांगा, परन्तु तूने नहीं दिया।"

इंसान जवाब देगा, "मेरे रब ! तू तो सारे जगत् का पालनहार है, मैं तुझे कैसे पानी पिलाता।"

अल्लाह कहेगा, "तुझ से मेरे अमुक बंदे ने पानी मांगा था, परन्तु तूने उसे पानी देने से इनकार कर दिया। हां, यदि तू उसे पानी पिलाता तो यहां उसका बदला पाता।" —मुस्लिम

सहानुभूति और सहयोग की शिक्षा

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) मक्का में तेरह साल तक इस्लाम की दावत देते रहे। आपकी इस तेरह वर्षीय दावत का केन्द्रीय विषय था—अल्लाह की बंदगी और उसके बंदों के साथ सहानुभूति और सहयोग, क्योंकि यही इस्लाम की बुनियादें हैं और इन्हीं से अन्य तमाम चीज़ें निकलती हैं। जो लोग मुहम्मद (सल्ल०) की इस दावत को स्वीकार करते, उन्हें आप आख़िरत (परलोक) में सफलता की शुभ-सूचना देते और जो इससे इनकार करते उन्हें असफलता की चेतावनी देते। इन्हीं दो बुनियादों को मज़बूत बनाने के लिए बार-बार और ताकीद के साथ नमाज़ और ज़कात का आदेश दिया गया है। नमाज़ में बंदा अपनी आध्यात्मिक भावनाओं को व्यक्त करता है और ज़कात के द्वारा इस बात का एलान करता है कि वह बंदों का भला चाहने वाला और हमदर्द है, वह अपनी कमाई हुई पूंजी से उनकी मदद कर सकता है। जब तक ये दोनों बुनियादें मज़बूत न हों दीन (इस्लाम) स्थापित नहीं हो सकता। नमाज़ जब तक ज़िंदगी में उतर न जाए इंसान की भावनाओं और अनुभूतियों में बंदगी की रूह पैदा नहीं हो सकती। उसी प्रकार जो हृदय सहानुभूति और हमदर्दी के भाव से ख़ाली हो

उनमें श्रेष्ठ नैतिक गुणों का उभरना सम्भव नहीं है। इंसानों को प्रेम के रिश्ते में जोड़ने का यही एक साधन है। इसके बिना उनमें दयालुता एवं सहानुभूति की भावनाएं नहीं पाई जा सकतीं। वे एक-दूसरे के लिए बलिदान और त्याग नहीं दे सकते और उनके अन्दर नर्मी एवं क्षमा करने के गुण नहीं पैदा हो सकते। इस्लाम ने सामूहिक एवं सामाजिक निर्देश देने से पहले ऐसे व्यक्ति तैयार किए जो अल्लाह के आज्ञापालक और उसके बंदों के शुभेच्छुक थे।जब वे इस योग्य हो गए तो उनके सामने दीन (इस्लाम) का विस्तृत स्वरूप पेश किया और उन पर अमल करना उनके लिए सरल हो गया। कुरआन के अनुसार वह ईमान वालों का प्रमुख गुण इस प्रकार बयान करता है, "वे नमाज़ क़ायम करते और ज़कात देते हैं।" (—कुरआन 23 : 2-4) कुरआन बताता है कि क़ियामत के दिन जहन्नम में जाने वाले अपने अपराध को इन शब्दों में स्वीकार करेंगे, "हम नमाज़ियों में नहीं थे और मुहताज को खाना नहीं खिलाते थे।" —कुरआन 74 : 43-44

जब तक इंसान ख़ुदा की इबादत करने वाला और बंदों का भला चाहने वाला न हो दीन उसके लिए एक भारी बोझ है, जिसे उठा कर वह अधिक दूर तक नही चल सकता।

सहानुभूति-सहयोग और अल्लाह की बन्दगी में सम्बन्ध

यदि आप विचार करेंगे तो ये दोनों बातें एक ही नज़र आएँगी। ख़ुदा के आगे श्रद्धा एवं प्रेम के साथ झुक जाना और उसकी राह में अपनी प्रिय चीज़ों को कुरबान करना एक ही हक़ीक़त के दो रुख़ हैं। यह एक ही भाव है जो अमल में आता है तो दो विभिन्न रूप धारण कर लेता है। जहां अल्लाह की बन्दगी होगी, वहां अनिवार्य रूप से अल्लाह के बंदों के साथ प्रेम भी होगा, वरना समझा जाएगा की बन्दगी में खोट है।

अरब के बहुदेववादी नमाज़ पढ़ते थे, परन्तु कुरआन ने उन्हें चेतावनी दी और कहा कि वे नमाज़ के एक स्वरचित रूप पर अमल करते हैं और नमाज़ की आत्मा एवं वास्तविकता से अनभिज्ञ हैं। इसके पक्ष में यह तर्क दिया कि उनके

दिल ज़रूरतमंदों और मुहताजों के हक़ में नर्म नहीं पड़ते। वे उन्हें धुतकारते और धक्का देते हैं। उनकी संकीर्ण हृदयता का यह हाल है कि आम उपयोग की चीज़ें तक किसी को नहीं देते। —कुरआन (अल माऊन)

इससे मालूम होता है कि क़ुरआन मुहताजों की मदद को अनिवार्य समझता है। वह इसकी कल्पना नहीं कर सकता कि एक चीज़ हो और दूसरी चीज़ न हो, क्योंकि ये दोनों धाराएं एक स्रोत से निकली हैं। जो दिल अल्लाह के प्रेम से भरा हो उसे बंदों की मुसीबत में बेचैन होना चाहिए। यही कारण है कि क़ुरआन अल्लाह की बंदगी और अल्लाह के बंदों के साथ सहानुभूति एवं भलाई चाहने का एक साथ उल्लेख करता और उन्हें एक समान महत्व देता है। उसके निकट वे बिल्कुल एक-दूसरे के पूरक हैं। कभी-कभी तो उसने सहानुभूति और हमदर्दी को इबादत का विकल्प ठहराया है। मानो इंसानों के साथ भलाई करने का सम्बन्ध उनके रब से सम्बन्ध का प्रमाण है।

'रोज़ा' विशुद्ध इबादत का एक रूप है, जिसमें इंसान अल्लाह के लिए भूखा-प्यासा रहता है और अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखता है, परन्तु आप देखेंगे कि क़ुरआन मुसीबत में घिरे इंसानों की मदद और उनका भला चाहने को उस विशुद्ध इबादत के बराबर कर देता है।

यदि कोई व्यक्ति अपनी बीवी को मां घोषित कर दे और फिर उससे रुजू करना चाहे तो प्रायश्चित के रूप में एक ग़ुलाम आज़ाद करे या निरंतर साठ रोज़े रखे या साठ मुहताजों को खाना खिलाए –58 : 3 । क़सम का प्रायश्चित यह बयान किया गया है कि दस मुहताजों को खाना-कपड़ा दिया जाए या किसी ग़ुलाम को आज़ाद किया जाए या तीन दिन के रोज़े रखे जाएं। —5 : 89

जो व्यक्ति हज का समय आने तक उमरा (दर्शन) से लाभ उठाना चाहे उसके लिए आदेश है कि वह क़ुरबानी दे और यदि क़ुरबानी का जानवर न मिले तो दस रोज़े रखे। –2 : 196

इन आदेशों में ग़ुलाम आज़ाद करने, मुहताजों को खाना-कपड़ा देने और क़ुरबानी को रोज़े के बराबर हैसियत दी गई है।

इबादतों में जो त्रुटि रह जाए उसकी भरपाई का भी यही उपाय बताया गया है कि ख़ुदा के बंदों के साथ भलाई की जाए। 'इहराम' की हालत में बाल मुंडवाने पर प्रतिबंध है यदि किसी कष्ट के कारण इंसान को बाल मुंडवाना पड़े तो आदेश है कि रोज़ा रखे या क़ुरबानी दे या सदक़ा करे। -2 : 196

रमज़ान के रोज़ों के बाद फ़ितरा (दान) की व्यवस्था की गई है और इसकी यह वजह बताई गई है कि इससे रोज़ों में जो बुरे एवं अप्रिय कार्य हो जाते हैं, उनकी भरपाई हो जाती है। (अबू दाऊद)

इससे भी आगे की बात यह कि जो लोग अपने बुढ़ापे या रोग के कारण रोज़ा न रख सकें, उन्हें रोज़े के बदले किसी मुहताज को खाना खिलाने का आदेश है।

ख़ुदा की नेमतों का एहसास

ये दलीलें इस बात का सबूत हैं कि इबादत और लोगों के प्रति सहानुभूति एवं उनकी सहायता में गहरा एवं निकट सम्बन्ध है। इबादत की रूह यह है कि इंसान ख़ुदा की नेमतों और एहसानों को जब सोचे तो कृतज्ञता की भावना से उसका दिल चमक जाए और वह व्याकुल हो कर स्वयं को ख़ुदा के सामने डाल दे। लोगों के प्रति सहानुभूति और उनकी सहायता के पीछे यही रूह काम कर रही है। इंसान जब देखता है कि उसे देखने को आंख, बोलने को ज़बान, सोंचने-समझने के लिए बुद्धि और जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक वस्तुएं प्राप्त हैं और दूसरे ख़ुदा के बंदे इन नेमतों से वंचित हैं। उन्हें जीवित रहने के लिए खाना-कपड़ा प्राप्त नहीं है, तो सहसा वह ख़ुदा का शुक्र बजा लाता है और अपनी दौलत का एक हिस्सा उनके लिए निकाल देता है। वह सोचता है कि यदि आज मैं ख़ुदा के ज़रूरतमंद बंदों के काम आऊं तो शायद कल क़ियामत के दिन ख़ुदा मुझे किसी ज़रूरत से बचाए। आज यदि मैं किसी बंदे को कपड़ा पहनाऊं तो कल शायद ख़ुदा मुझे नग्नता से बचा ले और यदि किसी भूखे को खाना खिलाऊं तो ग़रीबी और मुहताजी से मुक्ति दे।

ख़ुदा की नेमतों को पाने के बाद यदि किसी के अन्दर यह भावना न उभरे तो इसका मतलब यह है कि उसका दिल ख़ुदा की नेमतों के एहसास से ख़ाली है। ख़ुदा को छोड़कर अन्य की इबादत करने वालों की मानसिकता की यही ख़राबी है कि वह अपने अस्तित्व और इस ब्रह्माण्ड से लाभ तो उठाती है, परन्तु उसे ख़ुदा का दिया हुआ नहीं समझती। उसके निकट नेमतों से भरी यह दुनिया मात्र संयोग का करिश्मा है और यह भी एक संयोग ही है कि उसके अपने अस्तित्व में शक्तियों और योग्यताओं का भण्डार एकत्र हो गया है जिसके द्वारा वह इस ब्रह्माण्ड से लाभ उठा रही है। यह परिकल्पना इंसान के अन्दर से दया और प्रेम की भावनाओं को समाप्त करने वाली है। इंसान को जो कुछ मिला है यदि वह किसी का दिया हुआ नहीं है तो इसमें किसी का कोई हिस्सा भी नहीं हो सकता। अनेक ख़ुदाओं को मानने वाला मस्तिष्क ख़ुदा की कल्पना तो करता है, परन्तु यह कल्पना धुंधली और अस्पष्ट होती है। वह इंसान को ख़ुदा की नेमतों को समझ पाने का वास्तविक विवेक नहीं प्रदान करता। क़ुरआन इंसान के अन्दर यह सोच उभारता है कि इस दुनिया में जो कुछ तुम्हें मिला है, वह ख़ुदा की ओर से मिला है, इसलिए स्वयं ही उसके बंदों का हक़ उसमें वाजिब हो गया है। इसी संदर्भ में क़ुरआन में आया है–

> "क्या हमने उसे दो आंखें और एक ज़बान और दो होंठ नहीं दिए और उसे (भलाई और बुराई) की दोनों राहें नहीं दिखाईं? परन्तु वह घाटी पर नहीं चढ़ा। तुम जानते हो यह घाटी क्या है? गर्दन का छुड़ाना (ग़ुलाम आज़ाद करना) या फ़ाक़े के दिन खाना खिलाना निकटवर्ती अनाथ को या बदहाल मुहताज को।" –90 : 8-16

नेमतों को ख़ुदा की ओर से समझना कृतज्ञता का एहसास पैदा करता है और इंसान को दूसरों के प्रति निष्ठावान और भला चाहने वाला बनाता है। दूसरों को देते हुए उसे यह ख़्याल नहीं होता कि वह उन पर एहसान कर रहा है बल्कि ख़ुदा की कृपा एवं दया का एहसास उसके अन्दर जाग उठता है। वह सोचता है कि आज जो नेमतें मुझे प्राप्त हैं उन्हें प्राप्त करने में मेरी कोशिशों एवं

मेहनतों का कोई हाथ नहीं है उनसे मैं वंचित भी हो सकता था और ये मुझ से छिन भी सकती हैं। यह एहसास आदमी को विवश करता है कि जो नेमतें उसे मिली हैं उन पर सांप की तरह क़ब्ज़ा न जमाए रहे, बल्कि उन्हें ख़ुदा का अनुदान समझ कर उसकी राह में ख़र्च करे।

इस्लाम के निकट इसी भावना का वास्तविक मूल्य है। यदि यह भावना न हो तो आदमी हज़ार ख़र्च करे इस्लाम उसे निष्फल समझता है। यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति किसी धूल जमी चट्टान पर इस उम्मीद पर बीज छींट दे कि उससे खेती होगी।

इस भावना को उभारने के साथ इस्लाम ने निश्चित रूप से बताया कि न्याय एवं इंसाफ़ के उसूल क्या हैं और ज़ुल्म की सीमा कहां से शुरू होती है? अपने जैसे दूसरे लोगों के साथ किन आधारों पर मामला करना चाहिए और वे कौन से तरीक़े हैं जो उनके मामलों को ग़लत और झूठा बना देते हैं? इस प्रकार उसूल निर्धारित करने के बाद व्यक्ति और समाज दोनों के लिए आसान हो जाता है कि वे इस कसौटी पर इंसान के मामलों का जायज़ा ले सके और उनमें जो ग़लती हो उसका सुधार करे।

जो सम्बन्ध ख़ुदा पर यक़ीन और उसकी हिदायत की बुनियाद पर अस्तित्व में आए और जो सम्बन्ध दूसरे कारकों के नतीजे में पैदा हों, उन दोनों में ज़मीन और आसमान का अन्तर है। पहले प्रकार के सम्बन्ध उस समय तक टूट नहीं सकते, जब तक कि ख़ुदा का आदेश उन्हें न तोड़ दे, परन्तु दूसरे प्रकार के सम्बन्ध हर क्षण टूट सकते हैं। ख़ुदा पर यक़ीन रखने वाला इंसान उन तमाम सम्बन्धों को निभाने पर विवश है जिनके निभाने का ख़ुदा ने आदेश दिया है, चाहे उसकी इच्छा हो या न हो, चाहे उसके साथ ज़ुल्म हो या इंसाफ़, परन्तु जिस व्यक्ति को ख़ुदा पर यक़ीन न हो वह हर उस सम्बन्ध को तोड़ सकता है, जिसमें उसका नुक़्सान हो और अगर उसका फ़ायदा हो तो अपने निकटतम सम्बन्धी को भी धोखा दे सकता है। वह जवाबदेही के भय से ख़ाली होता है इसलिए उससे हर प्रकार की बेवफ़ाई संभावित है, परन्तु एक मोमिन (ईमान वाला) अपने दुश्मन

के साथ भी धोखा और बेवफ़ाई नहीं क़र सकता, इसलिए कि उसका ख़ुदा इससे रोकता है।

सहानुभूति-सहयोग का प्रारम्भ

जब इंसान लोगों के साथ सहानुभूति और उनकी सहायता की भावना के साथ व्यवहार की दुनिया में आता है, तो उसके सामने सबसे पहले पत्नी, बच्चे, मां-बाप, भाई-बहन, पड़ोसी और रिश्तेदार आते हैं, क्योंकि इन्हीं से दिन-रात उसका सामना होता है। इस्लाम के निकट यही निकटतम लोग सबसे ज़्यादा इंसान के सदाचरण एवं सेवा का अधिकार रखते हैं। इन्हें छोड़ कर दूसरों पर वह ख़र्च नहीं कर सकता।

एक बार एक व्यक्ति ने मुहम्मद (सल्ल०) से सवाल किया कि मेरे पास एक दीनार है उसका उपयोग क्या है? आप (सल्ल०) ने जवाब दिया, "उसे स्वयं पर ख़र्च करो।" उसने कहा, "मेरे पास एक और दीनार भी है।" आपने कहा, "अपनी औलाद पर ख़र्च करो।" उसने कहा, "मेरे पास एक तीसरा दीनार भी है।" आपने कहा, "उसे अपनी बीवी पर ख़र्च करो।" उसने कहा, "मेरे पास चौथा दीनार भी है।" आपने कहा, "यह तुम्हारे ग़ुलाम का हिस्सा है।" उसने कहा मेरे पास एक और दीनार है।" आपने कहा, "उसका उपयोग अब तुम ख़ुद समझ सकते हो।"
(अबू-दाऊद, नसई)

इंसान को सदाचरण और भलाई करने का प्रारम्भ अपने निकटतम व्यक्तियों से करना चाहिए। यह एक स्वाभाविक बात है, क्योंकि इंसान उन लोगों की मदद करने में कोई कठिनाई महसूस नहीं करता, जो उससे क़रीब हों, बल्कि वह अपने अन्दर इसकी प्रेरणा पाता है। इस्लाम ने इस स्वाभाविक मनोवृत्ति को क़ानूनी हैसियत दे दी, ताकि हर आदमी हर हाल में इसका पाबंद रहे। इंसान जिस चीज़ का मालिक है, उसके सबसे अधिक अधिकारी वही लोग हो सकते हैं, जो उसके आस-पास रहते हैं और उसके दुख-दर्द में सम्मिलित रहते हैं। यदि किसी का बाप भूखा मर रहा हो तो उसके लिए सही नहीं होगा कि वह अपनी

दौलत उन लोगों पर ख़र्च करे, जिनसे उसका सिवाए इंसान होने के और कोइ रिश्ता नहीं है। उसका बाप उससे इंसानियत का भी रिश्ता रखता है और वंशानुगत सम्बन्ध भी। इसलिए वह उसके सदाचरण का दो गुना अधिकार रखता है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने कहा–

> "किसी ज़रूरतमंद पर सदक़ा मात्र सदक़ा है, परन्तु रिश्तेदार पर सदक़ा सदक़ा भी है और प्रत्युपकार भी।"
>
> (अहमद, तिर्मिज़ी, नसई, इब्नेमाजा)

तात्पर्य यह कि रिश्तेदार के साथ सदाचरण का सवाब दोगुना मिलेगा। इसका सबसे बड़ा फ़ायदा यह है कि समाज का कोई भी व्यक्ति अपने आपको बेबस, लाचार और बेसहारा नहीं महसूस कर सकता, क्योंकि सहयोगी और परोपकारी व्यक्तियों का एक वर्ग उसके निकट हमेशा मौजूद रहता है। बाप बेटे का मददगार और बेटा बाप का मददगार, भाई-भाई का मददगार, एक रिश्तेदार दूसरे रिश्तेदार का मददगार। यह विश्वास आदमी के अन्दर असीम शक्ति एवं स्फूर्ति पैदा करता है।

सहानुभूति-सहयोग की व्यापकता

लोगों के प्रति सहानुभूति और उनकी सहायता के लिए प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर किसी दायरे के खींच देने का मतलब यह नहीं है कि इस दायरे से बाहर सहानुभूति और सहायता का कोई मूल्य नहीं या इस्लाम इसको ग़लत समझता है। इसका मतलब केवल यह है कि इंसान के माल-दौलत से वे लोग वंचित न रहें, जो उसके निकट हैं। यह मात्र एक क्रम से प्रधानता देने का सवाल है, वरना इस्लाम इसे किसी इंसानी समाज का अपमान क़रार देता है कि उसके कुछ लोग भूखे और नंगे मर रहे हों और कुछ ऐशोआराम की ज़िन्दगी गुज़ारते हों। वह इंसानियत की बुनियाद पर सारे समाज का निर्माण करता है। उसकी शिक्षा है कि दोस्त, दुश्मन, अपना पराया, अजनबी, ग़ैर अजनबी, देशवासी एवं विदेशी के अन्तर के बिना सदाचरण किया जाए। उसके निकट इंसान-इंसान के

रूप में एक मूल्यवान निधि है। वह किसी भी प्रकार से उसे बर्बाद होने को पसंद नहीं करता। इसलिए वह प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य समझता है कि दूसरे व्यक्ति को बचाने का हर सम्भव प्रयास करे, वरना ज़मीन पर ख़ुदा की एक नेमत को वह बर्बाद करने का अपराधी होगा।

ज़ुल्म हमेशा सत्ता एवं सरकार के साथ रहा है, जहां इंसान को सत्ता मिली उसने अपने आपको सर्वशक्तिमान समझ लिया और जिस कमज़ोर को पाया भेड़-बकरी की तरह ज़ब्ह करना शुरू कर दिया। इस अत्याचार के कोपभाजन मुख्यत: तीन वर्ग बनते रहे हैं। औरत, ग़ुलाम और प्रजा। इन तीनों वर्गों के साथ ग़ुलामी और शासित की कल्पना चिपक गई थी और न्याय एवं इंसाफ़ तो जैसे उनका अधिकार था ही नहीं। औरत की सारी कहानी उत्पीड़न की कहानी है। ज़ुल्म का वह कौन-सा तीर है, जो उस पर आज़माया नहीं गया। इस्लाम ने औरत को मर्द का एक अंग बताया। इस प्रकार उसने यह वास्तविकता स्पष्ट की कि औरत पर मर्द की ओर से जो जोर ज़बर्दस्ती होती है, वह ख़ुद उसके अपने वजूद पर ज़्यादती है। ज़ालिम मर्द औरत पर ज़ुल्म नहीं करता, बल्कि अपने आप पर करता है। ग़ुलामी के चिह्न आज तक कुछ सुसभ्य देशों में मौजूद हैं, जिनको देख कर उसके अतीत का अनुमान लगाया जा सकता है। इस्लाम ने ग़ुलाम और मालिक के बीच भाईचारा का रिश्ता क़ायम किया और मालिक को आदेश दिया कि जो तुम खाओ वही अपने ग़ुलाम को भी खिलाओ और जो तुम पहनो वही अपने ग़ुलाम को भी पहनाओ। राजा और प्रजा का सम्बन्ध भी ग़ुलाम और मालिक के सम्बन्ध से भिन्न नहीं था। इंसानों के एक वर्ग ने दूसरे वर्ग को अपनी सेवा के लिए विशेष रूप से नियुक्त कर रखा था। इस्लाम ने राजा एवं प्रजा की इस परिकल्पना को समाप्त कर दिया और बताया कि हुकूमत ख़िदमत (सेवा) का दूसरा नाम है और जो हाकिम है वह अपनी प्रजा का सेवक है न कि मालिक।

ख़ुदा का क़ानून

क़ानून बनाने वाला ख़ुदा है

समाज में जो शक्ति लोगों पर शासन करती है, वह क़ानून है। क़ानून व्यक्ति की आज़ादी को नियंत्रित करता और उनकी कार्य-सीमा को निर्धारित करता है। इस्लाम में क़ानून केवल ख़ुदा का है। किसी काम को करने का आदेश देने अथवा उससे रोकने का अधिकार केवल ख़ुदा से ही प्राप्त है, क्योंकि इस ब्रह्माण्ड में सत्ता, सामर्थ्य एवं आधिपत्य उसी का है। सारे इंसान समान हैं। कोई किसी पर श्रेष्ठता और बड़ाई नहीं रखता। यदि कोई यहां अपनी सत्ता चलाना चाहे तो मानो वह ख़ुदा के अधिकार को चुनौती देता है और जो किसी के आदेश के आगे झुकता है, वह अपनी मौत और हीनता का एलान करता है। अधिक स्पष्ट शब्दों में, केवल ख़ुदा का आदेश क़ानून है। किसी बादशाह का फ़रमान, किसी गिरोह एवं जमाअत का निर्णय या किसी क़ौम की परम्पराओं को क़ानून का दर्जा प्राप्त नहीं है, इसलिए इस्लाम क़ानून के उन सभी तरीक़ों को ग़लत और झूठ समझता है, जो इंसानों ने स्वयं अंगीकार कर रखे हैं। वह किसी को यह अधिकार देने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं है कि वह इंसानों को ख़ुदा के आज्ञापालन के स्थान पर अपनी दासता की दावत दे।

इस्लामी क़ानून की सार्वभौमिकता

ख़ुदा को क़ानून बनाने वाला मानने का पहला तक़ाज़ा यह है कि क़ानून को केवल सामूहिक जीवन तक सीमित न रखा जाए, बल्कि वैयक्तिक जीवन में भी ख़ुदा के क़ानून का शासन स्वीकार किया जाए, क्योंकि ख़ुदा से इंसान का सम्बन्ध बाज़ार और अदालत ही में नहीं होता बल्कि प्रथमतः वह निजी हैसियत से उससे सम्बन्ध जोड़ता है। वह ख़ुदा को पहले अपनी भावनाओं और अनुभूतियों में पाता है। फिर सियासी और सामाजिक मैदान में ढूंढता है। यदि वह ख़ुदा को अपनी भावनाओं के संसार में न पा सका तो जीवन के

गतिविधियों में वह उसे नहीं मिल सकता। इसी कारण इस्लामी क़ानून का दायरा बहुत विस्तृत है। वह अपने दामन में मनुष्य की मनोभावनाओं और उसके वाह्य आचरणों दोनों को समेटता है। वह एक ओर यह बताता है कि इंसान ख़ुदा के सामने अपनी आध्यात्मिक भावनाओं को किस प्रकार प्रकट करे और उसकी राह में कुरबानी करना चाहे तो किन मर्यादाओं को ध्यान में रखे दूसरी ओर व्यवहार के मैदान में ख़ुदा का आज्ञापालन और बंदगी का तरीक़ा सिखाता है। उसकी पकड़ से इंसान के जीवन का कोई भी पहलू स्वतंत्र नही रहने पाता। वह उसके प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों पर क़ब्ज़ा करता है और दोनों का मार्गदर्शन करता है।

इंसानी क़ानून की ख़राबी

इंसान के बनाए क़ानून की सबसे बड़ी खराबी यह है कि वह किसी कार्य से उस समय बहस करता है, जबकि वह वजूद में आ जाता है। उस कार्य के पीछे कार्य करने वाली भावनाएं एवं अनुभूतियां उसके बहस के दायरे से अलग होती हैं। इसलिए कि इंसान के अन्तःकरण में छुपी हुई भावनाओं का ठीक-ठीक पता लगाना किसी के वश में नहीं है। उन तक उसकी पहुंच होती ही नहीं। हालांकि इंसान के जीवन में बुनियादी महत्व उसकी भावनाओं को प्राप्त है। भावनाएं ही किसी मामले में निर्णायक होती हैं। उन्हीं के तहत इंसान किसी ओर क़दम उठाने और उठाए हुए क़दम को वापस लेने का फ़ैसला करता है। एक व्यक्ति रास्ता चलते हुए देखता है कि उसके सामने जाने वाले का बटुआ गिर गया है और वह उसे हाथ में लेकर दौड़ता हुआ उस तक पहुंचता है और उसके हवाले कर देता है। एक-दूसरा व्यक्ति अपने साथी को बेख़बर पाकर उसकी जेब ख़ाली कर लेता है। यह केवल भावना की भिन्नता है, जो दो विभिन्न कार्य-रूप में प्रकट हुई है, परन्तु क़ानून की कमज़ोरी यह है कि वह चोर के हाथ में हथकड़ी पहनाने के लिए तो तैयार रहता है, परन्तु इस अपवित्र भावना पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाता जो दूसरे के माल पर क़ब्ज़ा करने के लिए इंसान को उभारती रहती है।

यदि एक व्यक्ति किसी को किसी प्रकार का भौतिक नुक़सान पहुंचाए तो क़ानून उससे जवाबतलबी के लिए फ़ौरन मौजूद होता है। परन्तु इंसान के सीने में घृणा, शत्रुता एवं दुर्भावना की जो भट्टी सुलग रही होती है वह उससे कोई मतलब नहीं रखता, हालांकि जब तक दुश्मनी की आग शेष है, उस समय तक नुक़सान पहुंचाने से वह बाज़ नहीं आ सकता।

इंसान अमल से अपने-आपको थोड़ा ज़ाहिर करता है, उसके व्यक्तित्व का बड़ा भाग तो वह है जो उसके अन्तःकरण से सम्बन्ध रखता है। अन्तःकरण में जब स्पन्दन होता है, तो अंगों में गति होती है, इसी का नाम अमल (क्रिया) है। उसकी सभी क्रियाएं, उसकी ख़ुशी एवं ग़म तथा प्रेम एवं घृणा के अधीन होती हैं। इंसान का वास्तविक व्यक्तित्व उसके आन्तरिक अस्तित्व से निर्धारित होता है, जिसे कोई आंख देख नहीं सकती। उसका अमल उसके इसी आन्तरिक अस्तित्व की अपूर्ण एवं त्रुटिपूर्ण अभिव्यक्ति है। इंसान दिन और रात में कुछ घंटे काम करता है, परन्तु यदि वह सदैव कार्यरत रहे और हर क्षण गतिमान रहे और अमल करता रहे तब भी उसका आन्तरिक अस्तित्व पूर्णतः अभिव्यक्त नही हो सकता।

क़ानून इंसान के सम्पूर्ण जीवन से बहस नहीं करता, बल्कि वह अपने बहस का दायरा इंसान के केवल व्यावहारिक संसार तक सीमित रखता है जबकि इंसान के अन्दर वास्तविक परिवर्तन लाने के लिए ज़रूरी है कि उसके सम्पूर्ण जीवन को बदलने वाला क़ानून बनाया जाए। इस्लाम एक ऐसा ही क़ानून हमें देता है उसकी जड़ें इंसान की भावनाओं एवं अनुभूतियों में उतरी हुई हैं और उसकी शाखाएं सारे समाज में फैल गई हैं। वह पहले इंसान के अन्दर की दुनिया प क़ब्ज़ा करता है फिर बाहर की दुनिया में उसे आज्ञापालन की दावत देता है अल्लाह को अपना मालिक एवं पालनहार मानने से इंसान के अन्दर इबादत व जो भावना पैदा होती है वही उसे बाज़ार की चहल-पहल में अल्लाह का गुला बनाए रखती है। इस्लामी क़ानून की यह विलक्षणता है कि व्यक्ति से समाज अपना पालन करने की मांग करने से पूर्व उसे पूरी तरह अपने सांचे में ढाल ले

है। वह निकाह, तलाक़, सज़ा, दण्ड-विधान, न्याय एवं इंसाफ़ और सुख-शान्ति के क़ानून उस समय देता है जबकि इंसान के मन-मस्तिष्क खुदा के सामने झुक चुके हों। वह इस हक़ीक़त पर यक़ीन करता है कि यदि इंसान के अन्तःकरण पर अल्लाह के क़ानून की हुक्मरानी क़ायम हो जाए तो उसके वाह्य कर्म उससे मुक्त नहीं रह सकते और क़ानून से मन-मस्तिष्क ही यदि बग़ावत कर रहे हों तो यह बग़ावत अमल की दुनिया में क़दम-क़दम पर ज़ाहिर होने लगती है। किसी मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) के लिए अपने निफ़ाक़ (कपट) का छुपाना बहुत कठिन होता है। इसीलिए जब तक इंसान का अन्तःकरण अल्लाह के सामने झुक न जाए उस समय तक इस्लाम उसे क़ानून का वास्तविक पालनकर्ता नहीं क़रार देता, चाहे वह इंसानों के साथ मामले में इस्लामी क़ानून का पाबंद ही क्यों न रहे, उसके निकट केवल वही व्यक्ति मुस्लिम है जिसके दिल की गहराइयों में इस्लाम उतर चुका हो और जो अमल की दुनिया में इस हाल में आए कि उसकी भावनाएं एवं अनुभूतियां ख़ुदा के आदेश की पालक हो चुकी हों और उसे देख कर दुनिया एक उसूल वाले एवं शरीफ़ इंसान से अधिक ख़ुदा परस्त (ईश-परायण) और आज्ञापालक बंदा समझे। वह अदालत में अल्लाह का फ़ैसला सुनाने से पहले ख़ुद को उसके फ़ैसले का पाबंद कर चुका हो। वह खुले बाज़ार में अल्लाह के आदेश की पैरवी करने से पहले एकान्त में उसकी आज्ञा का पालन करना स्वीकार कर चुका हो। यही कारण है कि इस्लाम अल्लाह की इबादत और बंदगी को सियासी एवं सामाजिक क़ानूनों से अधिक महत्व देता है। अल्लाह की बंदगी इंसान के अन्दर ज़िन्दगी के तमाम मामलों में उसके आज्ञापालन का चेतनापूर्ण एहसास पैदा करती है और इंसान आस्था एवं अमल (कर्म) के विरोधाभास से पवित्र हो जाता है। उसका वैयक्तिक एवं सामूहिक जीवन इस प्रकार एक जैसा हो जाता है कि उसके एक रुख़ को देख कर दूसरे रुख़ को समझा जा सकता है। दुनिया का कोई भी क़ानून अपने मानने वालों को इस प्रकार प्रशिक्षण नहीं देता।

क़ानून के मानने वालों और न मानने वालों के प्रति इस्लाम की नीति

इस्लाम वैयक्तिक जीवन और सामूहिक जीवन दोनों में क़ानून की हुक्मरानी की मांग करता है। उसके मानने वालों की ओर से जीवन के जिस क्षेत्र में क़ानून का उल्लंघन होगा उनसे वह जवाबदेही करेगा। जिस प्रकार चोरी करने पर उनके हाथ काटे जाएंगे और बलात्कार करने पर कोड़े लगेंगे, उसी प्रकार यदि वे नमाज़ छोड़ दें तो उन्हें क़ैद की सज़ा दी जाएगी। वे चाहे सामूहिक जीवन में ख़ुदा के आदेश से विद्रोह करें या वैयक्तिक जीवन में उसकी अवज्ञा करें, दोनों सूरतों में वे इस्लाम की दृष्टि में बाग़ी हैं। इसके क़ानून में धरती पर उपद्रव, आतंक और फ़ित्ना एवं फ़साद फैलाने वालों की सज़ा क़त्ल है, क्योंकि जो व्यक्ति इस्लाम क़बूल करता है वह इस बात को स्वीकार करता है कि उसकी आस्था और कर्म दोनों इस्लामी क़ानून के अधीन होंगे और यदि वह किसी भी पहलू से क़ानून का पालन नहीं करता तो अपनी उस स्वीकृति और अभिवचन से मुंह मोड़ता है।

परन्तु जो लोग इस्लाम के हक़ (सत्य) होने पर संतुष्ट न हों इस्लाम उन पर ज़बरदस्ती अपनी आस्थाएं और विचार नहीं थोपता। वह उनसे इस्लामी क़ानून के केवल उस भाग का पालन करने की मांग करता है, जिसका सम्बन्ध देश के प्रबन्ध से है। देश के क़ानून के पाबंद रहते हुए उन्हें हर प्रकार के संघर्ष का हक़ होगा। इस्लामी क़ानून उनकी गतिविधियों पर अंकुश तब लगाएगा, जबकि वह उन दृष्टिकोणों को क्षति पहुंचाने वाली हों जिस पर समाज स्थापित है। अन्यथा उनके अधिकारों को चुनौती देने की किसी भी व्यक्ति को अनुमति नहीं होगी। उन्हें अपनी आस्थाएं छोड़ने पर विवश नहीं किया जाएगा, उनकी सांस्कृतिक पहचान को नहीं मिटाया जाएगा, उन्हें व्यापार एवं कृषि और उद्योग-धंधे की आज़ादी होगी और उन्हें बोलने-लिखने का अधिकार होगा। तात्पर्य यह कि उन बुनियादी मानव-अधिकारों में से जिसे प्रत्येक व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अपने

साथ लेकर पैदा होता है, किसी अधिकार से उन्हें वंचित नहीं किया जाएगा। परन्तु इस्लाम ऐसे लोगों पर अपने दृष्टिकोण को चलाने और राज्य की व्यवस्था को स्थापित करने की ज़िम्मेदारी नहीं डालता, क्योंकि किसी व्यवस्था को वे ही लोग चला सकते हैं, जिनकी भावनाओं एवं अनुभूतियों पर वह व्यवस्था शासन कर रही हो। जिन व्यक्तियों के दिलों में यह व्यवस्था जगह न पा सके, वह उसे ज़मीन पर कभी क़ायम नहीं कर सकते।

क़ानून की सार्वभौमिकता पर आपत्ति

क़ानून की पूर्णता और सार्वभौमिकता को आमतौर पर पसंद नहीं किया जाता और उसका क्षेत्र सामूहिक जीवन तक सीमित समझा जाता है। किसी क़ानून की विशेषता यह समझी जाती है कि वह व्यक्ति के जीवन में उसी सीमा तक हस्तक्षेप करे, जिस सीमा तक शान्ति-व्यवस्था एवं न्याय स्थापित रखने के लिए उसका हस्तक्षेप ज़रूरी है। परन्तु यह दृष्टिकोण कभी-कभी इंसान को विचार एंव व्यवहार के विरोधाभास में डाल देता है। उसके विचार उसके आचरण का प्रतिनिधित्व नहीं करते और उसका वाह्य उसके अन्तःकरण के अनुकूल नहीं होता। इसमें दो-रूपता और कपट का रोग पैदा हो जाता है। वह एक विशेष दिशा में सोचता है, परन्तु सामाजिक क़ानून उसे दूसरी दिशा में चलने को विवश करता है। उसकी भावनाएं एवं अनुभूतियां क़ानून के पक्ष में नहीं होते और उससे उसके आज्ञापालन की मांग की जाती है। क़ानून सामूहिक जीवन के लिए जिन चीज़ों को लाभदायक ही नहीं बल्कि ज़रूरी समझता है, व्यक्ति उन चीज़ों को ग़ैर-ज़रूरी और हानिकारक समझता है। इस प्रकार विभिन्न मामलों में व्यक्ति के विचार क़ानून के स्वभाव से मिल नहीं पाते। फिर वह या तो ऐसे कामों के करने पर विवश किया जाता है, जिनके करने की उसके अन्दर कोई प्रेरणा नहीं होती या अपने अन्दर ऐसी भावनाएं लिए हुए होता है जिन पर अमल के लिए कोई मैदान वह अपने सामने नहीं देखता।

इसके जवाब में यह कहा जाता है कि विचार भिन्नता के बावजूद क़ानून के

सम्मान का भाव प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर मौजूद होता है। क़ानून का विरोध करते हुए उसकी अन्तरात्मा हीन भावना का शिकार होती है और वह स्वयं को समाज का अपराधी समझने लगता है, क्योंकि क़ानून को समाप्त करने के बाद किसी सामूहिक व्यवस्था को बाक़ी नहीं रखा जा सकता। क़ानून ही वह ज़ंजीर है जो सामूहिक जीवन को बांधे रखती है, इसलिए जब से इंसान ने सामूहिक जीवन का प्रारम्भ किया उस समय से क़ानून की ज़रूरत का एहसास भी वह रखता है और समय के साथ-साथ यह एहसास मज़बूती/से अपनी जड़ें उसके मन-मस्तिष्क में उतार चुका है।

परन्तु इस विश्लेषण में वास्तविकता कम और अतिश्योक्ति अधिक है। क़ानून के सम्मान का एहसास इंसान के अन्दर इतना मज़बूत नहीं कि वह उसे क़ानून के उल्लंघन से रोके रख सके। क़ानून एक सामूहिक आवश्यकता है और व्यक्ति को वास्तव में अपने व्यक्तिगत लाभ से रूचि होती है। व्यक्तिगत लाभ एवं हानि की बुनियाद पर वह आमतौर पर सोचता और अमल करता है। यदि उसके किसी कार्य से समाज को हानि और उसके निज को लाभ पहुंच रहा हो तो कठिन है कि वह इस कार्य से रुक जाए, क्योंकि क़ानून के सम्मान से समाज को जो लाभ प्राप्त होता है वह पूरे समाज में फैल जाता है और व्यक्ति का हिस्सा उसमें बहुत थोड़ा होता है। इसी प्रकार समाज को पहुंचने वाली हानि का प्रभाव भी आमतौर पर व्यक्ति पर **परोक्ष** रूप से और बहुत कम मात्रा में पड़ता है। इसलिए जिन चीज़ों के लाभ-हानि से व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो उनका महत्व भी उसके निकट अधिक होता है। यदि उसके मकान की एक-ईंट अपनी जगह से हट जाए, तो उसे कड़ा आघात पहुंचेगा और वह उसे ठीक करने की चिन्ता करेगा, परन्तु यदि किसी सरकारी इमारत को आग लग जाए तो भी उसे कुछ अधिक अफ़सोस नहीं होगा. क्योंकि मकान के साथ उसके व्यक्तिगत हित की कल्पना सम्बद्ध है। वह उसे गर्मी-सर्दी से बचाता और उसके बीवी-बच्चे की रक्षा करता है, परन्तु सरकारी इमारत से उसे इस प्रकार के किसी प्रत्यक्ष लाभ की उम्मीद नहीं होती।

इसी स्वार्थपरता की प्रवृत्ति का परिणाम है कि क़ानून की ज़रूरत एवं महत्व का एहसास रखते हुए भी इंसान क़ानून का उल्लंघन करता रहता है। एक तस्कर अपने देश की दौलत दूसरे देश को तस्करी करते हुए यह नहीं सोचता कि इस प्रकार अपने देश को वह निर्धनता में डाल रहा है, बल्कि वह सोचता है कि उससे मेरी बच्ची की शादी धूम-धाम से होगी और मेरे मकान की चौथी मंज़िल पूरी हो जाएगी। इसी प्रकार एक क्लर्क रिश्वत के कुछ पैसे इसलिए क़बूल करता है कि उससे एक जोड़ा अच्छा वस्त्र तैयार हो जाएगा। उसको यह एहसास नही होता कि उसका यह एक जोड़ा वस्त्र, सत्य एवं न्याय का ख़ून बहाने के बाद तैयार हो रहा है'।

क़ानून के प्रभावी और शक्तिशाली होने के पक्ष में एक तर्क यह दिया जात है कि उसके पीछे जनमत होता है, क्योंकि क़ानून ही समाज में अधिकारों र्क सुरक्षा का साधन है। क़ानून को यदि समाप्त कर दें, तो प्रत्येक व्यक्ति र्क जान-माल तथा इज़्ज़त एवं आबरू ख़तरे में पड़ जाएगी। इसलिए क़ानून तोड़ने को कोई समाज सहन नहीं कर सकता। कोई भी व्यक्ति बाज़ार की चीज़ों मं मिलावट करने को पसंद नहीं करता, क्योंकि उसके बाद वह ख़ुद भी किसी शु चीज़ की उम्मीद नहीं रख सकता। आदमी यदि अपने दुश्मन के घर में चोरी व जायज़ समझता है, तो मानो वह अपने घर में चोरी की दावत दे रहा है। किर मामूली से ज़ुल्म को प्रोत्साहन देने का मतलब ही यह है कि हर ओर ज़ुल्म ए ज़्यादती का रास्ता खुल जाए। इसलिए व्यक्ति का हित इसी में निहित है f समाज क़ानून का पाबंद रहे और जो व्यक्ति क़ानून का उल्लंघन करना चाहे, उ उल्लंघन का अवसर न दिया जाए। समाज के इस एहसास को ठुकरा दे किसी व्यक्ति के लिए सरल नहीं है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जनमत कभी क़ानून को रद्द नहीं कर सकता, पर यह बात केवल वैचारिक रूप में ही प्राप्त होती है। कार्यक्षेत्र में पहले ही क़ा पर यह प्रश्न पैदा होता है कि किस क़ानून के पीछे आम-सहमति है अ कौन-सा क़ानून जनता के समर्थन से वंचित है। आज तक कोई ऐसा तरीक़ा न

मालूम हो सका जिससे पूरी क़ौम का मत मालूम किया जा सके। अब तक जनमत को मालूम करने के जितने तरीक़े अपनाए गए हैं, उनसे अधिक से अधिक बहुसंख्यक जनता के रुझान का पता लगाया जा सकता है। इस बहुसंख्या में भी आम-तौर पर एक छोटी-सी संख्या ही की इच्छा निर्णायक होती है। जिस क़ानून के बनाने में पूरी क़ौम की इच्छा सम्मिलित नहीं हो, उससे उस क़ानून की वफ़ादारी की अपेक्षा मुश्किल ही से की जा सकती है।

इस मौक़े पर कहा यह जाता है कि क़ानून चाहे सबकी इच्छा के अनुसार हो या न हो, परन्तु सब उसके समर्थन को विवश होते हैं क्योंकि न्याय और शान्ति को बनाए रखने के लिए क़ानून की आवश्यकता होती है। परन्तु यह एक काल्पनिक बात है, क्योंकि यह ज़रूरी नहीं कि क़ानून का उल्लंघन प्रत्येक के लिए हानिकारक ही हो। इससे समाज के कुछ व्यक्तियों को लाभ भी पहुंचता है, इसलिए अपराधी को क़ानून तोड़ने पर समाज के कुछ लोगों की निंदा एवं भर्त्सना की आशंका होती है तो कुछ दूसरे लोगों का प्रोत्साहन एवं समर्थन भी उसे प्राप्त होता है। क़ानून तोड़ने वाले व्यक्ति का समर्थन करने वाले प्रायः वे व्यक्ति होते हैं, जिनके साथ वह जीवन व्यतीत करता है और जो हमेशा उसके निकट रहते हैं। इसलिए वह उनके समर्थन अथवा विरोध को बहुत महत्व देता है और समाज के सैकड़ों लोगों के विरोध के मुक़ाबले में उन चंद लोगों का समर्थन उसके निकट अधिक महत्व रखता है। कई बार इंसान क़ानून का उल्लघन उन्हीं व्यक्तियों की प्रेरणा पर करता है। शायद एक सरकारी अधिकारी रिश्वत लेने से अपने आपको बचाए रखे, यदि उसके निकटतम लोग उसे अपनी असल आमदनी पर संतोष करने की अनुमति दें और उसे अनुचित तरीक़े से अपनी आमदनी बढ़ाने पर विवश न करें।

क्या इंसानी क़ानून अपने उद्देश्य में सफल है?

बात यहीं समाप्त नहीं होती कि क़ानून के उल्लंघन के प्रेरक तत्व स्वयं समाज में उपस्थित होते हैं, बल्कि असल प्रश्न क़ानून ही के बारे में पैदा होता

। जिस उद्देश्य के लिए क़ानून की पाबंदी स्वीकार की जाती है उसकी क्या ज़मानत है कि अनिवार्यतः प्रत्येक क़ानून से वह उद्देश्य प्राप्त ही हो। हमारे सामने क़ानून-निर्माण का एक लम्बा इतिहास है। कितने ऐसे क़ानून बने जो काले नाग की तरह मानवाधिकारों को निगलते चले गए और जिनके विष से पूरा समाज चीख़ता और कराहता रहा। यह क़ानून का ही चमत्कार तो है कि वेश्यावृत्ति को सामाजिक ज़रूरत साबित करके इंसानों को उसके दुष्परिणामों को भुगतने पर विवश किया जाता रहा। राष्ट्रीय हित के नाम पर लूट-खसोट को उचित ठहराया गया और आज भी ज़ुल्म एवं नाइंसाफ़ी का हर रास्ता क़ानून के ही नाम पर खुलता है। उनमें बहुत-से ज़ुल्म तो वे हैं जिन पर किसी एक व्यक्ति अथवा किसी एक राष्ट्र की नहीं बल्कि सारी दुनिया की सहमति की मुहर लगी है।

जब तक क़ानून-निर्माण का अधिकार इंसानों को प्राप्त है, क़ानून उनकी इच्छाओं से स्वतंत्र नहीं हो सकता। वह या तो किसी व्यक्ति की इच्छा का खिलौना बना रहेगा, या किसी गिरोह की इच्छा का। अगर उसमें व्यापकता है तो वह राष्ट्र की इच्छाओं का अनुगामी होगा। ऐसा कोई क़ानून जिससे सारे इंसानों की भलाई एवं कल्याण हो, कोई भी व्यक्ति नहीं बना सकता। उस पर निजी क़ौमी एवं राष्ट्रीय हित इस प्रकार छाये हुए होते हैं कि उनसे ऊपर उठकर सोचना उसके लिए कठिन है और फिर क़ानून एक प्रशासक शक्ति की हैसियत से उसी समय काम कर सकता है जबकि इंसान की भावनाएं उसके अधीन हों और वह क़ानून का पालन समाज के दबाव से या इस कल्पना से न करे कि यह एक समाज की ज़रूरत है, बल्कि आस्था के रूप में वह क़ानून को अपनी सम्पूर्ण भावनाओं, निजी, क़ौमी, राष्ट्रीय, वंशानुगत हितों से ऊपर स्वीकार करे और एकांत में भी उसके विरोध को सही न समझे।

इस्लामी क़ानून की सफलता के कारण

इस्लामी क़ानून एक ऐसी हस्ती की हुकूमत का एलान है, जो इन तमाम

संकीर्णताओं एवं पक्षपातों से पाक है, जिनसे किसी भी इंसान का हृदय दूषित हो सकता है। उसके बारे में यह सोचा भी नहीं जा सकता कि वह अपने फ़ैसले में किसी की ओर झुक जाएगा। वह सबसे उच्च और महान है तथा सबको एक ही नज़र से देखता है। क़ानून के सम्बन्ध में यह सोचना कि वह ख़ुदा की ओर से है उसकी श्रेष्ठता एवं महानता का एहसास इंसान के अन्दर पैदा करता है और वह उसे एक ऐसे फ़रमान के रूप में स्वीकार करता है, जिससे मतभेद की कोई गुंजाइश ही नहीं। क़ानून की सफलता की पहली शर्त यह है कि उसका स्वागत इस प्रकार हो जैसे वह अखण्डनीय हो।

इस्लाम इंसान की भावनाओं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है कि वह उसे जान से अधिक प्रिय समझता है और उसके द्वारा प्रदान किए गए क़ानून का विरोध किसी भी स्थिति में उचित नहीं समझता। वह रात के सन्नाटे में भी उसकी पाबंदी उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार दिन के उजाले में करता है। उसके लिए एकांत की जगह और आम सभा दोनों बराबर होते हैं। इस पहलू से क़ानून के तमाम दफ़्तरों में क़ुरआन वह अकेला 'क़ानून की किताब' है जो इंसान की ज़िंदगी के लिए क़ानून ही नहीं देती, बल्कि उसकी भावनाओं को भी क़ानून के प्रति अनुकूल बनाती है। उसने क़ानून का उतना विवरण प्रस्तुत नहीं किय जितना विस्तार से उसने इंसान की मनोवैज्ञानिक कमज़ोरियों का सुधार किया ज़िंदगी की किसी भी समस्या में उसने दो-चार-दस से अधिक आदेश नहीं दिए बल्कि उसके सम्पूर्ण आदेशों एवं क़ानूनों को अंगुलियों पर गिना जा सकता है परन्तु उसने क़ानून के पालन की भावना को ऐसा उभारा कि इंसान स्वयं ही क़ानून की आत्मा और उद्देश्य की खोज करने लगा। आज मुसलमानों के पास क़ानून की इतनी बड़ी पूंजी है कि उस पर वे गर्व कर सकते हैं और यह पूंजी अधिकतर मात्र इस तलाश एवं खोज का परिणाम है कि क़ानून का मंशा एवं उद्देश्य क्या है और किस प्रकार जीवन को उसके अधीन बनाया जा सकता है? यह तलाश एवं खोज इतनी पवित्र भावनाओं और इतनी निष्ठा एवं परिश्रम के साथ हुई है कि क़ानून का सम्पूर्ण विवरण यदि बयान कर भी दिया जाता तो

शायद अपने उद्देश्य के लिहाज़ से इससे कुछ भिन्न नहीं होता। यह सब कुछ इस एहसास का परिणाम है कि क़ानून एक सर्वोच्च शक्ति है और अपने आपको उसके अधीन कर देना है। यदि यह एहसास दिल के अन्दर से न उभरे तो इंसान हर ज़ंजीर तोड़ सकता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि क़ानून की कठोरता या सामाजिक दबाव का इंसान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। निश्चय ही इन दोनों चीज़ों में बहुत शक्ति है, परन्तु ये किसी को क़ानून का पाबंद नहीं बना सकतीं, हां ग़लत काम से रोकने में किसी हद तक सहायक होती हैं। इसलिए क़ानून का यह गुण है कि वह इन सहायक शक्तियों से भी लाभ उठाए। अपराधी को उसके अपराध का ऐसा दण्ड दे कि किसी दूसरे को उस अपराध को करने का साहस न हो। यदि क़ानून में इतनी कठोरता न हो तो न्याय एवं शान्ति की स्थापना कठिन है। इस्लाम जहां इंसान को क़ानून के पालन के लिए तैयार करता है वहीं उसने क़ानून को भी इतना कठोर रखा है कि मात्र उसकी कठोरता ही क़ानून के उल्लंघन से रोकने का एक बहुत बड़ा ज़रिया है।

परन्तु इस्लाम हर मामले में क़ानून की कठोरता को उचित नहीं समझता। उसके निकट कठोरता अन्तिम उपाय है, जिसका प्रयोग उस समय होना चाहिए जबकि अपराधी के सुधार का और कोई उपाय न बचा हो और उससे समाज पर दुष्प्रभाव पड़ रहे हों।

इस्लाम तीन परिस्थितियों में क़ानून की कठोरता को उचित ठहराता है। एक यह कि ईमान लाने के बाद कोई व्यक्ति उससे इनकार कर दे। इसका कारण यह है कि समाज जिन बुनियादों पर स्थापित है उनके सत्य होने की गवाही देकर फिर उनके ग़लत एवं असत्य होने का एलान करना, उसे कमज़ोर करना है। दूसरी परिस्थिति यह है कि देश की प्रशासनिक व्यवस्था से बग़ावत की जाए। तीसरी परिस्थति यह है कि इंसानों की जान-माल, इज़्ज़त एवं आबरू पर हाथ डाला जाए। इनमें से जो भी परिस्थिति उत्पन्न हो इस्लाम क़ानून का सख़्ती से पालन चाहता है। उसके निकट बलात्कारी को क्षमा प्रदान करना या बाग़ी को

बग़ावत का अवसर देना, स्वयं एक सामाजिक अपराध है। इसी प्रकार व समाज के दबाव से भी लाभ उठाता है। अतः उसने दण्ड और दण्ड-विधान वे लिए ज़रूरी समझा है कि उन्हें स्पष्ट रूप से एवं सरेआम लागू किया जाए, तावि दण्ड पाने के साथ अपराधी का नैतिक अपमान भी हो और समाज के अन्दर य एहसास बाक़ी रहे कि अपराध प्रोत्साहन के लिए नहीं है, बल्कि वह इस योग्य वि हर ओर से उसकी निंदा हो। उसने इस्लामी मूल्यों की सुरक्षा और समाज वे अस्तित्व एवं सुरक्षा की ज़िम्मेदारी किसी एक-दो व्यक्ति पर नहीं, बल्कि सम्पू लोगों पर डाली है। इस्लाम को यदि कोई आघात पहुंचे और उसे बचाने व प्रयास न हो तो सम्पूर्ण समाज अपराधी समझा जाएगा। प्रत्येक मुसलमा इस्लाम का रक्षक है और उस पर होने वाले हमले की रोकथाम करना उसव कर्त्तव्य है।

क़ुरआन के कुछ क़ानून

ऊपर जो बातें कही गई हैं उनके स्पष्टीकरण के लिए हम क़ुरआन से उसवे कुछ क़ानून पेश करते हैं। प्रत्येक इंसान का जीवन सम्मान करने योग्य है। उ कष्ट पहुंचाने या उस पर हाथ डालने का किसी को कोई अधिकार नहीं है। इ सन्दर्भ में यह उसूल है कि इंसान के शरीर एवं जीवन के साथ जिस प्रकार व भी छोटी या बड़ी ज़्यादती होगी, उसी प्रकार का बदला लिया जाएगा। क़ुरआ में आया है—

> "तौरात में हमने यहूदियों पर यह अनिवार्य किया था (यही आदेश इस उम्मत के लिए भी है) कि जीवन के बदले जीवन, आंख के बदले आंख, नाक के बदले नाक, कान के बदले कान, दांत के बदले दांत और इसी प्रकार दूसरे आघात के लिए भी बराबर का बदला है। फिर जो उसे माफ़ कर दे तो वह उसके लिए कफ़्फ़ारा है और जो लोग अल्लाह की उतारी हुई शरीअत के अनुसार फ़ैसला न करें वही ज़ालिम हैं।" —5 : 45

जान के बाद माल का महत्व है। इस्लाम ने इसकी सुरक्षा को सुनिनिश्चत किया है। इसलिए उसने आदेश दिया है कि जो व्यक्ति चोरी करे उसके साथ कोई नर्मी न की जाए और उसका हाथ काट दिया जाए। क़ुरआन में आया है—

"चोरी करने वाले और चोरी करने वाली के हाथ उनके कर्म के बदले में काट दो। यह अल्लाह की ओर से उनको शिक्षाप्रद दण्ड है। और अल्लाह सर्वज्ञ और द्रष्टा है।" —5 : 38

इस्लाम समाज में जिन उच्च नैतिक मूल्यों को उन्नति देना चाहता है, उनमें अस्मिता एवं सम्मान को बुनियादी महत्व प्राप्त है। इसलिए उसने बलात्कार एवं व्यभिचार को घोर अपराध घोषित किया है और उसके लिए कठोर दण्ड का प्रावधान किया है। क़ुरआन में आया है—

"व्यभिचार करने वाली औरत और व्यभिचार करने वाले मर्द इनमें से प्रत्येक को सौ कोड़े लगाओ और अल्लाह का क़ानून लागू करते हुए तुम्हें इन पर दया नहीं आनी चाहिए, यदि तुम अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हो और ज़रूरी है कि उन्हें दण्ड देते समय ईमान वालों का एक समूह उपस्थित हो।" —24 : 2

इस्लाम चाहता है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति की इज़्ज़त-आबरू सुरक्षित रहे और उस पर किसी ओर से हमला न हो। इसलिए उसने आदेश दिया—

"और जो लोग पाकदामन (पवित्र) औरतों पर लांछन लगाएं और चार गवाह नहीं पेश करें तो तुम उन्हें अस्सी कोड़े लगाओ और कभी उनकी गवाही स्वीकार न करो, क्योंकि ये लोग फ़ासिक़ (दुष्कर्मी) हैं।"

—24 : 4

हुकूमत से बग़ावत और धरती पर फ़साद फैलाना जितना भयानक अपराध है, उसकी सज़ा भी उतनी ही कठोर है। क़ुरआन में है—

"जो लोग अल्लाह और उसके रसूल से लड़ाई करते हैं और ज़मीन पर फ़साद (अशान्ति एवं बुराई) फैलाते फिरते हैं, उनकी सज़ा यही है

कि उन्हें बुरी तरह क़त्ल किया जाए या सूली पर चढ़ाया जाए या उनके हाथ और पैर विपरीत दिशा से काट दिए जाएं। यह दुनिया में उनके लिए अपमान है और आख़िरत (परलोक) में उनके लिए बड़ा दण्ड है। किन्तु इससे वे लोग अलग हैं जो तौबा कर लें इसके पहले कि तुम उन पर क़ाबू पाओ— जान लो कि अल्लाह क्षमाशील और दयावान् है।" —5 : 33

इन आयतों में आप देखेंगे कि क़ानून को मात्र सामाजिक प्रतिबंध की हैसियत से नहीं प्रस्तुत किया गया है, बल्कि वह एक ऐसी हस्ती का आदेश है जिसकी गिरफ़्त से इंसान कभी आज़ाद नहीं हो सकता। इनमें एक ओर क़ानून का उल्लंघन करने पर कठोर दण्ड का प्रावधान है और दूसरी ओर आख़िरत की परिकल्पना के सहयोग से उसकी पाबंदी करने के लिए उभारा गया है। साथ ही ये क़ानून उन सभी व्यक्तियों को सम्बोधित करके प्रस्तुत किए गए हैं, जो उनके सत्य होने को मानते हैं, ताकि पूरे समाज में उनके लागू करने का एहसास जाग्रत रहे और प्रत्येक व्यक्ति यह सोचने लगे कि क़ानून के उल्लंघन की रोकथाम उसका अपना कर्त्तव्य है और उसकी सुरक्षा की ज़िम्मेदारी उस पर डाली गई है।

इस्लाम एक शाश्वत जीवन-व्यवस्था

इस्लाम का अतीत एवं भविष्य

कभी-कभी आप इस्लाम के सम्बन्ध में इस प्रकार की टिप्पणियां सुनेंगे कि 'इस्लाम चौदह सौ साल पहले की जीवन-व्यवस्था है अब उसकी पुनरावृति सम्भव नहीं ।' इस प्रकार के वाक्य एक विशेष मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं । इनमें एक ओर इस्लामी जीवन-व्यवस्था को अतीत की एक वास्तविकता के रूप में स्वीकार किया जाता है और दूसरी ओर भविष्य के लिए उसकी ओर से निराशा व्यक्त की जाती है, हालांकि जो घटना अतीत में एक बार मूर्त रूप में आ चुकी है, पुनः उसके पेश आने की संभावना किसी भी ऐसी घटना के मुक़ाबले में अधिक है जो अब तक केवल विचारों की दुनिया में है, क्योंकि अतीत हमें विश्वास प्रदान कराता है और भविष्य के बारे में केवल अनुमान लगाया जा सकता है । अतीत किसी वास्तविकता की दलील होता है, जबकि भविष्य केवल संभावनाओं से बहस करता है । हम किसी संभावना को तो रद्द कर सकते हैं, परन्तु किसी वास्तविकता का खंड़न नहीं कर सकते । इस आधार पर इस्लामी जीवन-व्यवस्था के पुनः स्थापना की संभावना मज़बूत हो जाती है, क्योंकि वह अतीत की एक ऐसी ठोस और स्पष्ट वास्तविकता है कि इतिहास में उससे अधिक स्पष्ट घटना नहीं पाई जाती । यदि कोई विद्यार्थी इतिहास के पन्ने खोले तो शायद उसकी नज़र सबसे पहले इस्लामी जीवन-व्यवस्था की घटना पर पड़ेगी । अतीत की यह घटना भविष्य में अपने पुनः स्थापित होने का एलान है ।

घटनाएं इतिहास के अधीन नहीं होती

जो लोग इस्लामी जीवन-व्यवस्था के भविष्य से इनकार करते हैं उनका तर्क यह है कि प्रत्येक घटना कुछ विशेष ऐतिहासिक कारणों एवं परिस्थितियों के

तहत अस्तित्व में आती है, यदि वे परिस्थितियां न हों तो वह घटना भी अस्तित्व में नहीं आ सकती और परिस्थितियां किसी इच्छा के अधीन नहीं होतीं, बल्कि वे स्वाभाविक गति से चलती हैं। इंसान उन पर बिल्कुल सामर्थ्य नहीं रखता। उसके वश में नहीं है कि परिस्थितियां जिस रुख़ पर चल रही हों उसके विपरीत कोई दूसरा रुख़ अपने लिए निश्चित कर लें। दूसरे शब्दों में कोई भी दृष्टिकोण अपने बल एवं सामर्थ्य से इस धरती पर स्थापित नहीं होता, बल्कि वाह्य शक्तियां उसे जन्म देती हैं। इंसान उन शक्तियों के अधीन एवं उनका अनुयायी है। वह उससे जिस प्रकार चाहती हैं काम लेती हैं।

परन्तु यह परिकल्पना वास्तविकता के विपरीत है। घटनाएं इतिहास की गति के अधीन कभी नहीं होतीं, बल्कि इंसान का संकल्प एवं साहस घटनाओं को अस्तित्व प्रदान करते हैं। यह अवश्य है कि कभी-कभी जब कोई घटना पेश आने वाली होती है तो इतिहास की गति उसकी सहायक बन जाती है, परन्तु ऐसा भी होता है और बहुत होता है कि अति प्रतिकुल परिस्थितियों में एक जानदार दृष्टिकोण उठता है और अपनी स्वाभाविक शक्ति एवं योग्यता के द्वारा छा जाता है। इतिहास उसे देख कर अपना रुख़ निश्चित करता है और ज़माने को उसके कारण अपने चिर-परिचित एवं स्थायी मूल्यों को छोड़ना पड़ता है।

यह कहना एक जानी-पहचानी वास्तविकता को झुठलाना है कि ज़ुल्म, नाइन्साफ़ी, अशांति और बुराई परिस्थितियों के कारण अस्तित्व में आती हैं और परिस्थितियां ही इंसान को सत्य एवं न्याय से भी परिचित कराती हैं। ज़ारशाही के बाद साम्यवाद की आपदा रूस पर लादी गयी तो क्या वहां की परिस्थितियां ही उसकी प्रेरक थीं, या एक ज़ुल्म की गिरफ़्त ढीली हुई तो दूसरे ज़ुल्म ने अपना पंजा जमा लिया। अधिनायकवाद या तानाशाही यदि लोकतन्त्र का स्थान लेती है तो क्या इसका कारण जनतंत्र की असफलता होती है या शासन का शौक़ लोकतंत्र के गले पर छुरी फेरता है? घटनाएं यदि परिस्थितियों के अधीन होतीं तो शायद इंसान सच्चाई से वंचित ही रहता, क्योंकि सच्चाई का इतिहास बताता है कि वह हमेशा ज़ुल्म एवं नाइन्साफ़ी के जवाब में उभरा है और समय की

परिस्थितियों के विपरीत सफलता प्राप्त की है।

चौदह सौ साल पहले अरब में इस्लाम की दावत का उठना और उसका अपने वातावरण पर छा जाना इतिहास की एक प्रमुख घटना है। यह दावत एक ऐसे समय में शुरू हुई, जबकि समय की परिकल्पनाएं उसके बिल्कुल विरुद्ध थीं। पग-पग पर उनके बीच लड़ाई होती रही। अंततः समय की उन परिकल्पनाओं को अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी और जीवन का नक़्शा पूर्ण रूप से उस दावत के अनुकूल होता चला गया। इस्लामी जीवन-व्यवस्था की सफलता इस पहलू से विश्व-इतिहास की अकेली मिसाल है कि परिस्थितियां उस पर किसी रूप में बिल्कुल प्रभावी नहीं हो सकीं। जब यह जीवन-व्यवस्था व्यवहारिक रूप में स्थापित हुआ तो इसके किसी भाग में सुधार करने की ज़रूरत नहीं पड़ी। समाजवाद आज दुनिया का एक प्रिय दृष्टिकोण है, परन्तु जो भी देश उसे अपनाता है अपनी परिस्थितियों के अनुरूप उसे बिगाड़ कर अपनाता है, परन्तु इस्लामी जीवन-व्यवस्था जब स्थापित हुई तो ठीक उसी रूप में स्थापित हुई जिस रूप में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने उसे पेश किया था। दुनिया की प्रत्येक व्यवस्था में दृष्टिकोण एवं व्यवहार में जो विरोधाभास हमें मिलता है, इस्लामी व्यवस्था में यह विरोधाभास नहीं मिलता।

अतीत में इस्लाम का इस प्रकार पूर्ण प्रभुत्व इस बात का प्रमाण है कि आज भी वह प्रभुत्व प्राप्त कर सकता है। परिस्थितियां न तो उसके मार्ग में रुकावट बनेगी और न उनसे उसे समझौता करना पड़ेगा।

परिस्थितियां इंसान पर शासन नहीं करतीं, बल्कि वे उसके विचारों का प्रतिनिधित्व करती हैं। जो यह स्पष्ट करती हैं कि इंसान किस प्रकार के समाज एवं सभ्यता को पसंद करता है और नैतिक मूल्यों एवं क़ानून के सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण क्या है? यदि कोई शक्तिशाली दृष्टिकोण इंसान के विचार शैली में कोई परिवर्तन ला सके तो निश्चय ही परिस्थितियां भी बदल सकती हैं। यहां टकराव वास्तव में दृष्टिकोण एवं परिस्थितियों के बीच नहीं होता बल्कि एक दृष्टिकोण एवं दूसरे दृष्टिकोण के बीच होता है। जो दृष्टिकोण शक्तिशाली

एवं प्रभावी होता है, परिस्थितियां उसका अनुसरण करती हैं, वह जिस रुख़ पर चलता है परिस्थितियों की धारा भी उसी रुख़ पर बहने लगती हैं।

वर्तमान दौर विशुद्ध भौतिकता का दौर है। इसने इंसान के चारों ओर भौतिकता का एक ऐसा जाल बिछा रखा है कि उसके लिए इस जाल से बाहर क़दम निकालना कठिन हो गया है। सभ्यता, संस्कृति, समाज, शिक्षा, उद्योग-धंधे, व्यापार हर चीज़ पर भौतिकवादी सोच छायी हुई है। आदमी भौतिकवादी सोचों के तहत सोचता और भौतिकवादी मूल्यों से हर चीज़ को तौलता है। परन्तु हमारा विश्वास है कि इसके मुक़ाबले में ख़ुदापरस्ती (ईश-भक्ति) और आख़िरत की चाह की धारणा सही ढंग से पेश की जाए तो परिस्थितियों में परिवर्तन आ सकता है और भौतिकवाद के बनाए हुए सारे सांचे टूट सकते हैं। परिस्थितियां यदि भौतिकवाद के मार्ग में रुकावट न बनें तो कोई कारण नहीं कि वह आख़िरत की चाह के मार्ग में बाधक हों। जिस प्रकार आज इंसान अपनी भौतिकवादी मानसिकता के कारण विवश है कि भले या बुरे हर तरीक़े से दुनिया का ऐश प्राप्त करे, बिल्कुल उसी प्रकार आख़िरत की चिन्ता उसे विवश करेगी कि वह आने वाले लाभ के लिए वर्तमान के सुख-चैन को क़ुरबान कर दे।

हक़ हो या बातिल, झूठ हो या सच, अत्याचार हो या न्याय इनका अभ्युदय हर स्थिति में और हर काम में हो सकता है। परिस्थितियों की भिन्नता से इनके रूप तो बदलते रहते हैं, परन्तु वास्तविकता में कोई अन्तर नहीं आता। चोरी भारत और अमेरिका दोनों जगह होती हैं। अन्तर केवल यह है कि एक चोर जो भारत में सेंधमारी करता है, शायद अमेरिका की बदली हुई परिस्थिति में मोटर कार की चोरी को उचित समझे। आज जो व्यक्ति अपने व्यापार में धोखा-धड़ी को उचित समझता है यदि वह सौ साल पहले पैदा होता तब भी अपने व्यापार को इससे पाक न रखता। हां, यह ज़रूर है कि धोखा-धड़ी के जिन उपायों से वह इस समय काम ले रहा है, एक सदी पहले उसके उपाय भिन्न होते। दुश्मन का प्रतिरोध अतीत में भी होता था और आज भी होता है। इतने अन्तर के साथ

कि अतीत में इंसान अपने दुश्मन पर पत्थर और भाला से हमला करता था और आज बम बरसाता है।

इंसान का स्वभाव अटल है

इंसान इस ज़मीन पर जब से आबाद है, उसकी सांस्कृतिक, राजनीतिक, भौगोलिक और रहन-सहन सम्बन्धी परिस्थितियों में सैकड़ों-हज़ारों बार परिवर्तन आए हैं, परन्तु उसकी भावनाओं एवं अनुभूतियों में कोई अन्तर नहीं आया। वह जिस युग में बिल्कुल सरल एवं असभ्य-जीवन व्यतीत कर रहा था, न तो उस समय अच्छाई और बुराई की अनुभूतियों से ख़ाली था और न अब जबकि उस पर औपचारिकताओं के परदे पड़े हुए हैं, उसकी यह अनुभूति छुप गई है। वर्तमान समय की फैली हुई ज़रूरतों की पूर्ति के लिए आज जिस प्रकार वह ज़ुल्म एवं अत्याचार का मार्ग अपनाता है, उसी प्रकार अतीत में भी अपनी सीमित ज़रूरतों के बावजूद वह ज़ुल्म एवं अत्याचार करता था। अतीत में यदि वह दयालुता, प्रेम एवं न्याय की कल्पनाओं से परिचित था तो अब भी वह इनसे अनभिज्ञ नहीं है। इसलिए यह समझना बड़ी नादानी है कि जिस दृष्टिकोण का किसी असभ्य समय में प्रयोग हुआ अब सभ्यता की रंगीनियों में उसकी पुनरावृत्ति कैसे हो सकती है? यह प्रश्न उस समय उठता जबकि वर्तमान सभ्य इंसान अतीत के असभ्य इंसान से भावनाओं एवं अनुभूतियों के मामले में भिन्न होता। हालांकि इस ज़मीन पर पहला इंसान जो अस्तित्व में आया उसके और आज के इंसान के बीच इस लिहाज़ से कोई अन्तर नहीं है। यदि अतीत के किसी दृष्टिकोण के अन्दर यह योग्यता है कि वह इंसान की भावनाओं पर शासन कर सके तो परिस्थितियों का कोई भी बदलाव उसे भविष्य में शासन करने से नहीं रोक सकता और आधुनिकतम दृष्टिकोण मिट सकता है, यदि उसके अन्दर यह योग्यता नहीं है।

सामयिक दृष्टिकोण

समय के साथ-साथ जो दृष्टिकोण समाप्त हो जाते हैं, वे दो तरह के होते हैं।

एक तो वे जिन्हें आकस्मिक समस्याओं ने जन्म दिया हो दूसरे वे जिनका सम्बन्ध किसी विशेष वर्ग एवं गिरोह से हो । जो संस्था इस उद्देश्य से अस्तित्व में आई हो कि उसे नौजवानों को शिक्षा-सम्बन्धी सुविधाएं उपलब्ध करानी हैं, उस संस्था को उस समय जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं रहता, जबकि शिक्षा-प्राप्ति की सुविधाएं मौजूद हों । यदि कोई नैतिक आचरण को सुधारने की समिति बनती है तो वह उसी समय तक काम कर सकती है जब तक कि उसे उपदेश एवं प्रचार करने की सुविधा प्राप्त हो और लोगों का सुधार एवं प्रशिक्षण सम्भव हो । उसी प्रकार जो प्रोग्राम किसी विशेष क़ौम अथवा जाति-बिरादरी के लिए अस्तित्व में आया है, उस क़ौम के साथ वह भी समाप्त हो जाता है । बाद में वह इतिहास की शोभा बढ़ा सकता है, परन्तु उसे पुनः जीवित नहीं किया जा सकता । जो दृष्टिकोण किसी क़ौम, नस्ल अथवा राष्ट्र की बुनियाद पर उभरता है, उसके समक्ष उस क़ौम और राष्ट्र की विशेष परिस्थितियां एवं समस्याएं होती हैं । उसे किसी दूसरी क़ौम के हित से कोई दिलचस्पी नहीं होती । किसी खास वर्ग के हित में बनने वाले प्रोग्राम में किसी दूसरे वर्ग की भलाई की राहें तलाश करना ऐसा ही है, जैसे किसी तंग गली में जिसमें एक समय में एक ही गाड़ी जा सकती हो, एक से अधिक गाड़ियां गुज़ारने का प्रयास किया जाए ।

इस प्रकार के दृष्टिकोणों के उभरने के लिए प्रत्येक नए राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों में प्रेरक-सामग्री उपस्थित रहती है । इसलिए वे बार-बार इंसान के सामने आते रहते हैं और इनमें सामयिक आकर्षण भी होता है । इसलिए इंसान उनकी ओर तीव्रता से बढ़ता भी है । कभी तो उनमें उनकी राष्ट्रीय भावनाओं की तुष्टि का सामान होता है, कभी उनसे उन्हें देश-प्रेम के रुझान को बल मिलता है और कभी वे उसके अन्दर उभरने वाली अच्छी भावनाओं की तुष्टि करते हैं, परन्तु इन सामयिक दृष्टिकोणों से दो बड़े नुक़्सान होते हैं । पहला नुक़्सान तो यह होता है कि इंसान वैचारिक स्तर पर सीमित होता जाता है । इंसान की यह बहुत बड़ी कमज़ोरी है कि वह अपनी विशेष समस्याओं एवं परिस्थितियों के तहत अपने मस्तिष्क में जो परिकल्पना करता है वास्तविकता को

भी उसमें सीमित समझने लगता है, हालांकि वास्तविकता उससे कहीं अधिक विस्तृत होती है। उदाहरणतः इस समय दुनिया का प्रत्येक देश चाहे वह साम्यवाद का पक्षधर हो या पूंजीवाद का, आर्थिक शोषण का विरोधी है और उसे समाप्त करना चाहता है, परन्तु प्रत्येक देश के निकट शोषण केवल वही है जो उसकी 'शोषण-परिकल्पना' के अनुरूप है। साम्यवाद निजी मिल्कियत को शोषण समझता है, परन्तु यदि मिल्कियत पर राज्य का क़ब्ज़ा हो जाए तो वह शोषण नहीं है। इसके विपरीत पूंजीवाद को निजी मिल्कियत में शोषण का कोई पहलू नज़र नहीं आता। हां, राज्य का क़ब्ज़ा उसके निकट शोषण है। हालांकि इनमें से प्रत्येक रूप में शोषण होता है। व्यक्ति भी शोषण जैसे कृत्य में लिप्त होता है और राज्य भी शोषण करता है। परन्तु सीमित दृष्टिकोण ने वास्तविकता को भी सीमित कर दिया।

कभी-कभी आदमी एक हक़ बात को अपनाना चाहता है, परन्तु अपनी सीमित दृष्टि के कारण वह उसके एक अथवा कुछ पहलुओं को देखता है और हक़ को उन्हीं में घिरा समझ लेता है, इसलिए वह हक़ को उसके तमाम पहलुओं के साथ अपना नहीं पाता।

इन सामयिक दृष्टिकोणों से दूसरा नुक़्सान यह होता है कि इंसान के लिए यह कल्पना करना कठिन हो जाता है कि कोई ऐसा दृष्टिकोण भी होता है जो समय एवं परिस्थितियों की पैदावार न हो और जो परिस्थितियों के प्रत्येक परिवर्तन के बाद भी जीवित और बाक़ी रहे। दूसरे शब्दों में इंसान ने सच्चाई एवं वास्तविकता के प्रत्येक आधार को सामयिक समझ लिया जिसका मूल्य एवं महत्व भी समय गुज़रने के साथ समाप्त हो जाता है। अब इंसान की समझ में यह बात नहीं आती कि समाज के निर्माण के लिए कुछ शाश्वत मूल्य भी हो सकते हैं, जिनके आधार पर व्यक्ति एक-दूसरे पर विश्वास कर सकें। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जगह भयभीत है कि जिस बुनियाद पर वह अपने जैसे दूसरे व्यक्ति से अथवा राज्य से मामला कर रहा है, वह कब तक स्थापित रह सकता है।

इस्लाम एक चिरस्थाई सत्य

इस्लाम एक शाश्वत एवं चिरस्थायी जीवन-मूल्य हमें उपलब्ध कराता है। ये मुल्य व्यक्ति के जीवन पर हर काल में उभरे हुए रहे हैं और आज भी उभरे हुए हैं। इतिहास के एक विशेष-काल में सामूहिक जीवन में भी इसका प्रदर्शन हो चुका है। जो लोग इस्लाम का केवल इस पहलू से अध्ययन करते हैं कि वह इतिहास के एक विशेष काल की एक सामूहिक जीवन-व्यवस्था रही है उनके लिए यह समझना कठिन है कि इस काल के बाद इस्लाम का क्या महत्व है? हालांकि इस्लाम जिस प्रकार एक ऐतिहासिक वास्तविकता है उससे कहीं अधिक एक शाश्वत वास्तविकता है। उसकी जड़ें इंसान की मनोभावना तक उतरी हुई हैं। यदि इंसान की मनोभावना अटल है तो इस्लाम भी शाश्वत और अटल है। निःसंदेह एक विशेष काल और एक विशेष वातावरण के सामूहिक जीवन पर उसका शासन रहा है, परन्तु वह उस काल और उस वातावरण की पैदावार नहीं है कि उसके बाद समाप्त हो जाए। वह न तो किसी विशेष सामयिक समस्याओं को लेकर उठा था और न उसके सामने किसी विशेष क़ौम का हित था। वह एक शाश्वत वसंत है। यदि कोई समाज उसका स्वागत करता है, तो वह भी वसंतमय हो जाता है, परन्तु संकीर्ण दृष्टि उसे केवल उस समाज का वसंत समझती है।

दो बुनियादी प्रश्न

इस्लाम इस पहलू से बहस नहीं करता कि इतिहास के किस काल और किस वातावरण में इंसान को किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा और उन परिस्थितियों में उसकी समस्याएं क्या होंगी और उनके समाधान के उपाय क्या होंगे। कृषि-काल में इंसान की आर्थिक समस्या किस प्रकार की होगी और औद्योगिक काल में किस प्रकार की होगी। बीसवीं सदी में उसकी सभ्यता कहां पहुंच चुकी होगी और उसके बाद उसमें क्या परिवर्तन होंगे? बल्कि वह इंसान से इंसान के रूप में बहस करता है, चाहे वह ऐतिहासिक काल से पहले का

ंसान हो या उसके बाद का। उसके निकट सांस्कृतिक, सामाजिक एवं ाजनीतिक और रहन-सहन सम्बन्धी समस्याएं इंसान की वास्तविक समस्याएं ाहीं हैं। ये समस्याएं दो बुनियादी प्रश्नों के अधीन हैं। इन प्रश्नों का जवाब ही सकी समस्याओं के समाधान का स्वरूप भी सुनिश्चित करेगा। इसलिए ये श्न ऐसे हैं जिन्हें उसे सभ्यता एवं संस्कृति की प्रत्येक क्रान्ति के अन्दर रहते हुए ल करना है। इनमें से एक अल्लाह के आज्ञापालन एवं इबादत का प्रश्न है और दूसरा अपने अंजाम का प्रश्न।

हला प्रश्न

पहले प्रश्न का तात्पर्य यह है कि इंसान स्वयं को अल्लाह के हवाले कर दे और अपनी आज़ादी से वंचित हो जाए। अल्लाह के आज्ञापालन एवं उसकी वज्ञा का प्रश्न ऐसा प्रश्न है जिसकी गूंज इंसान के अन्दर और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ं सुनाई दे रही है। इस ब्रह्माण्ड से हम उस समय तक लाभ नहीं उठा सकते ब तक यह फ़ैसला न कर लें कि हमें इस ब्रह्माण्ड के रचयिता के आज्ञापालक ी हैसियत से जीवन व्यतीत करना चाहिए, अथवा हम खुदमुख़्तार एवं आज़ाद । यह जिस प्रकार अतीत का प्रश्न है, उसी प्रकार भविष्य एवं वर्तमान का भी श्न है और इस प्रश्न का स्वरूप मात्र सैद्धान्तिक नहीं है, बल्कि यह जितना ैद्धान्तिक है उससे कहीं अधिक व्यावहारिक है। इंसान बहुत-सी समस्याओं ो नज़रअंदाज़ करके आगे बढ़ जाता है, परन्तु इस प्रश्न को हल किए बिना वह ज़ंदगी की राह में एक क़दम भी आगे नहीं चल सकता। उसके सामने अपने न की इच्छाएं हैं, क़ौम और देश की मांगें हैं, रीति-रिवाज हैं। इनमें से प्रत्येक ीज़ अपने आज्ञापालन की मांग करती है। उसे अनिवार्यतः इबादत के लिए या इन उपास्यों में से किसी का चयन करना होगा या अल्लाह की इबादत करनी ागी। इस प्रश्न को निरर्थक और बेजान वही व्यक्ति कह सकता है जो इस ह्माण्ड की एक-एक चीज़ और खुद अपने आपको झुठलाने का साहस कर कता हो।

दूसरा प्रश्न

दूसरा प्रश्न जो इस्लाम इंसान के सामने खड़ा कर देता है, वह आख़िरत (परलोक) का प्रश्न है। वह उसे भविष्य की एक वास्तविक घटना के रूप में पेश करता है। आख़िरत एक ऐसी ज़िंदगी है जिसका प्रारम्भ वहां से होता है जहां हमारी वर्तमान ज़िंदगी की सरहद समाप्त होती है। सभ्यता एवं संस्कृति के किसी भी दौर का इंसान यह कह नहीं सकता कि वह आख़िरत से सुरक्षित है, क्योंकि यह ऐसी घटना है जिससे बचाव का उसके पास कोई उपाय नहीं है। उसे एक ऐसी चीज़ का सामना करना है जिसके मुक़ाबले के लिए वह कोई हथियार नहीं रखता। वह एक ऐसी मंज़िल की ओर बढ़ रहा है जिधर चंद ही क़दम के बाद उसका संबल समाप्त हो जाएगा। यह एहसास किसी भी काल और किसी भी हैसियत के इंसान को आख़िरत की चिन्ता से उदासीन नहीं होने देता। यदि किसी शहर के लोगों को यह विश्वास हो जाए कि वहां बम गिराया जाने वाला है तो शहर का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह मज़दूर हो या मालिक, किसान हो या उद्योगपति, व्यापारी हो या वैज्ञानिक वहां से भागने का प्रयास करेगा। बिल्कुल यही मामला आख़िरत का है। वह प्रत्येक व्यक्ति की अपनी समस्या है। इससे वही व्यक्ति ग़ाफ़िल हो सकता है, जो उसे अनहोनी बात समझता हो, वरना उस पर विश्वास इंसान को ग़फ़लत की नींद सोने नहीं देगा।

अल्लाह और आख़िरत का प्रश्न पूरी ज़िंदगी का प्रश्न है। इस प्रश्न का हर जवाब यह चाहता है कि ज़िंदगी के पूरे ढांचे का निर्माण उसके अनुसार किया जाए। उसका सम्बन्ध इंसान की अन्तरात्मा से भी है और सामाजिक समस्याओं से भी। ज़िंदगी के किसी भी पहलू को उससे आज़ाद नहीं रखा जा सकता। अल्लाह और आख़िरत नहीं है तो इंसान विवश है कि अपनी वैयक्तिक एवं सामाजिक मांगों को किसी और तरीक़े से पूरा करे और इस विश्वास के बाद उसके विचार एवं व्यवहार के हर क्षेत्र पर शासन भी उसी का होगा।

अल्लाह और आख़िरत पर विश्वास का पहला प्रभाव तो व्यक्ति के अपने व्यक्तित्व पर पड़ता है। क्योंकि वह सीधे उन प्रश्नों का जवाब है, जो उसके अन्दर से उबलते हैं। जब इंसान को इस वास्तविकता का ज्ञान होता है कि इस ब्रह्माण्ड के अन्दर एक ऐसी हस्ती है जिसके हाथ में सारी सत्ता है, जो उसकी रचयिता और प्रभु है और जिसके समक्ष उसे एक दिन उपस्थित होना और अपने कर्मों का हिसाब देना है तो वह अपने रचयिता एवं प्रभु की पकड़ से भयभीत और उसके उपकारों का आकांक्षी होता है। वह ईश-भय और आख़िरत की आकांक्षा का साक्षात् बन जाता है। वह उसकी अनुकम्पा और दया की उम्मीद में अपने हाथ उसके आगे फैला देता है। सिर को उसके सामने झुका कर अपनी बेबसी एवं तुच्छता को स्वीकार करता है।

इबादत के उसूल

इंसान का यह एहसास एक शाश्वत और वास्तविक एहसास है। वह चाहे मुसीबत में हो या आराम में, सभ्यकाल में हो या अज्ञान काल में जब वह ख़ुदा की कल्पना करेगा तो अपने हृदय को इस भावना और अनुभूति से चमकता हुआ पाएगा, क्योंकि भावनाओं एवं अनुभूतियों का सम्बन्ध इंसान के अन्तःकरण से है और इंसान के अन्तःकरण में कोई ऐसी क्रान्ति नहीं आ सकती जिससे उसकी प्रकृति अब तक अनभिज्ञ रही हो। इसलिए इस्लाम में इबादत के उसूल एवं नियम अटल हैं। उनमें किसी प्रकार के सुधार का न तो किसी को अधिकार है और न वास्तव में इसकी ज़रूरत है। इबादत ख़ुदा की ख़ुदाई और महानता तथा अपनी तुच्छता एवं बेबसी को प्रकट करने का सबसे सही तरीक़ा है। यह तरीक़ा सुनिश्चित करना इसलिए भी ज़रूरी है कि वह इंसान को ऐसे तमाम तरीक़ों से बचाए रखता है जो ग़लत और असल उद्देश्य के विपरीत हैं, वरना इस बात की संभावना है कि वह वास्तविकता तक पहुंचने के बजाए उससे बिल्कुल वंचित ही रह जाए।

मामलों में इज्तिहाद[1]

परन्तु जहां तक इंसानी मामलों का सम्बन्ध है इस्लाम ने इसके प्रत्येक अंश से बहस नहीं की है, बल्कि ऐसे उसूल दिए हैं जो राजनीति एवं नैतिकता के लिए बुनियाद की हैसियत रखते हैं, क्योंकि इंसान की बाहरी दुनिया में हमेशा परिवर्तन होते रहते हैं। वह इस समय सभ्यता एवं संस्कृति की जिस प्रक्रिया में है चंद सौ साल पहले शायद इसकी कल्पना उसके लिए कठिन होती। मामलों और लेन-देन के आज कुछ तरीक़े हैं तो कल उन तरीक़ों में बदलाव आ जाता है। अतीत में इंसान जिन सामाजिक आचार से परिचित था वर्तमान काल में वह उसके लिए अपरिचित बन चुके हैं। क़ानूनों की ऐसी कोई सूची तैयार नहीं की जा सकती जो प्रत्येक काल के इंसानी मामलों पर हावी हो। इस्लाम ने राजनीति एवं नैतिकता के जो उसूल दिए हैं सभ्यता एवं संस्कृति का कोई भी परिवर्तन इंसान को उनसे उदासीन नहीं कर सकता। वह प्रत्येक काल और प्रत्येक स्थिति में उसका मार्गदर्शन करते हैं। ये उसूल राजनीति एवं नैतिकता के मार्ग के चिह्न हैं, जिनके द्वारा इंसान अपने ख़ुदा तक पहुंचता है। ये चिह्न यदि मार्ग से हटा दिए जाएं तो वह दुनिया के मामलों में ख़ुदा की इच्छा नहीं मालूम कर सकता। संस्कृति, राजनीति, सभ्यता और समाज के मैदान में जहां कहीं इंसान के भटकने और सीधे मार्ग से हटने की आशंका थी, ख़ुदा ने इन उसूलों के ज़रिये उसे समाप्त कर दिया।

ये चिह्न इस बात का प्रमाण होते हैं कि ज़मीन पर ख़ुदा की हुकूमत क़ायम है। इसलिए इस्लाम का फ़ैसला है कि ये कभी मिटाए न जाएं और इन्हें हमेशा स्पष्ट दिखता हुआ रहने दिया जाए। ये उसूल गिनती में बहुत कम हैं और ज़िंदगी के मामले इतने अधिक हैं कि सबको एक परिधि में नहीं रखा जा सकता, परन्तु उनकी मदद से अल्लाह की इच्छा मालूम की जा सकती है। ये

1- जहां कुरआन एवं हदीस का स्पष्ट आदेश न हो वहां कुरआन एवं हदीस के उसूलों की रोशनी में उचित रास्ता निकालना।

प्रकाश-स्तम्भ हैं जो मंज़िल का पता देते हैं और जब तक इन उसूलों से विचलन एवं विद्रोह नहीं होता, इनके बीच होने वाला प्रत्येक प्रयास ख़ुदा को पाने का प्रयास समझा जाएगा। इसे शरीअत के परिभाषिक शब्द में 'इज्तिहाद' कहा जाता है। इज्तिहाद वास्तव में यह है कि अल्लाह की दी हुई हिदायत की रोशनी में उसकी इच्छा मालूम की जाए, इसका दरवाज़ा क़ियामत तक खुला हुआ है।

बग़ावत क्यों ?

जब हम कहते हैं कि इस्लाम ही जीवन की सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान है, उसी से इंसानों की परेशानियां एवं मुसीबतें दूर हो सकती हैं, उन्हें सुख-चैन, शान्ति, ख़ुशहाली एवं संतुष्टि मिल सकती है, इसे छोड़कर वे किसी और माध्यम से अपनी समस्याओं को हल नहीं कर सकते, तो हमारे इस दावे के साथ तुरन्त प्रश्न पैदा होता है कि फिर तो सारी दुनिया को इस्लाम की ओर लौटना चाहिए, परन्तु क्या कारण है कि वह इससे दूर रहती है और इससे नफ़रत करती है ? इसके कुछ कारण हैं—

पहला कारण

इसका पहला कारण यह है कि इंसान को यह दुनिया और उसका अपना हित उसे अति प्रिय है। वह किसी ऐसे दृष्टिकोण को कठिनाई से ही स्वीकार करता है जो उसके हित से टकराता हो। जहां उसके निजी हित और सत्य से मुक़ाबला हो वहां वह अपने हित को प्रधानता देना पसंद करता है। यदि उससे कहा जाए कि सच्चाई के लिए अमुक नुक़्सान सहन करो तो वह तैयार नहीं होगा। परन्तु यदि उसे किसी लाभ की आशा हो, तो वह अपने भाई के साथ भी विश्वासघात कर सकता है। थोड़े-थोड़े से लाभ के लिए उसे अपने पड़ोसी के घर सेंध मारने और यहां तक कि क़ौम एवं देश से ग़द्दारी करने में भी कभी-कभी कोई संकोच नहीं होता।

इस्लाम ऐसी स्वार्थी प्रवृत्ति का विरोधी है। उसके निकट इंसान की तमाम उलझनों और समस्याओं का हल यह है कि वह अधिकारों और स्वार्थों की जंग समाप्त कर दे। दूसरों के अधिकार छीनने के बजाए उनके लाभ के लिए अपना अधिकार छोड़ दे, उनके सुख एवं राहत को अपने आराम पर प्रधानता दे, बल्कि यदि उस पर अत्याचार और ज़ुल्म हो तब भी न्याय एवं इंसाफ़ का दामन न

छोड़े, अहंकार एवं अभिमान का प्रदर्शन हो तो विनम्रता अपनाए। बुराई चाहने वालों के लिए भलाई चाहे और नफ़रत के जवाब में मुहब्बत को दिल में जगह दे। यदि कोई व्यक्ति आपके भाई की हत्या करता है तो आपको उसकी जान लेने का अधिकार है, परन्तु आपकी महानता और श्रेष्ठता इसमें है कि आप उसे क्षमा कर दें। यह सब किसी भौतिक उद्देश्य और दुनियावी लाभ के लिए नहीं बल्कि इसलिए कि आपका ख़ुदा प्रसन्न हो और आख़िरत में उसके प्रत्युपकारों के आप भागी हों।

इस्लाम की यह ऐसी मांग है कि इंसान इसे उसी समय पूरा कर सकता है जबकि आख़िरत और उसके लाभ एवं हानि को दुनिया और उसके लाभ एवं हानि से अधिक यक़ीनी समझे। परन्तु जो चीज़ भविष्य के परदे में छुपी हुई है और जिसे इंसान अपनी आंख से देख नहीं सकता, उसके सम्बन्ध में विश्वास का इस सीमा तक पैदा होना बहुत कठिन है कि वह उसके लिए अपने उन स्वार्थों को भी कुरबान कर दे, जिनका वह दिन-रात अवलोकन कर रहा है।

दूसरा कारण

प्रत्येक दौर अपने अन्दर कुछ-न-कुछ ख़ूबियां ज़रूर रखता है। उन्हीं ख़ूबियों के कारण वह दौर अस्तित्व में आता है और उनके द्वारा दूसरे दौर से बढ़ा हुआ भी होता है। परन्तु ये ख़ूबियां अधिकतर इंसानों की निगाहों पर इतनी छा जाती हैं कि वे उसकी खुली हुई ख़राबियों को भी नहीं देख पाते। एक दौर था जबकि इंसान सम्राटों के विजयों, उनके कुशल प्रशासन, उनकी दयालुता, दानशीलता तथा उनके पुरस्कारों का वैभवगान करता था। परन्तु जब यह दौर समाप्त हुआ और लोकतन्त्र आया तो उसका गुणगान करने लगा। न उसे राजशाही शासन-प्रणाली की ख़राबियां नज़र आती थीं और न लोकतन्त्र की कमियों ही को वह महसूस कर रहा है।

आधुनिक युग में विज्ञान ने तरक़्क़ी की। इस तरक़्क़ी से इंसान को निस्संदेह बहुत लाभ पहुंचा। इसके साथ इस काल के ग़लत दृष्टिकोणों एवं

विचारधाराओं ने उसे नुक़्सान भी बहुत पहुंचाया है, परन्तु वह विज्ञान की तरक़्क़ी से इतना प्रभावित है कि इस काल की कमियों एवं ख़राबियों के सम्बन्ध में सोचने के लिए भी वह तैयार नहीं है। उदाहरणतः यदि आप औरत और मर्द के स्वतंत्र रूप से मेल-जोल की निंदा करें, तो मात्र इस तर्क की बुनियाद पर आपको मूर्ख समझा जाएगा कि वर्तमान युग इसे तरक़्क़ी का साधन समझता है। इसी प्रकार वर्तमान युग के दृष्टिकोणों एवं विचाराधाराओं ने मज़हब और उसके उसूलों एवं आस्थाओं को रद्द कर दिया है, इसलिए उसका निरर्थक एवं बेकार होना भी निश्चित है।

भारत ही को देखिए यहां जितनी क़ौमें बसती हैं, उनमें से कोई भी धर्म को नकारने वाली नहीं है। बल्कि सबकी बुनियाद ही मज़हबी उसूलों पर रखी गई है। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत के स्वभाव में धर्म शामिल है, परन्तु यहां के चिन्तक अपनी समस्याओं के समाधान के लिए या तो उन्हीं दृष्टिकोणों में से एक का चयन करेंगे जिनका इस काल में चलन है, या उनमें से काट-छांट कर कोई नया 'अवलेह' तैयार करेंगे। किसी चिन्तक और यहां तक कि किसी धार्मिक व्यक्ति का भी साहस नहीं होता कि मज़हब की रोशनी में अपनी समस्याओं का समाधान ढूंढें या कम से कम उन तर्कों ही पर ग़ौर करें, जिनके आधार पर मज़हब को अव्यावहारिक एवं अवैज्ञानिक समझा जाता है।

इस काल का प्रत्येक सत्ताधारी दृष्टिकोण चाहे वह समाजवाद हो या लोकतंत्र या तानाशाही—अपने स्वभाव एवं दर्शन की दृष्टि से पूर्णतः ग़ैर-इस्लामी है। इसका आरम्भ ही ईश-विमुखता, क़ियामत तथा अज़ाब (यातना) एवं सवाब के इनकार से होता है। ऐसे किसी युग के सम्बन्ध में यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह स्वयं आगे आकर अपना सीना इस्लाम के लिए खोल देगा।

तीसरा कारण

इन दृष्टिकोणों से वही लोग प्रभावित नहीं हैं, जो इस्लाम से अपरिचित हैं बल्कि इस्लाम के नामलेवा भी इससे प्रभावित हैं। इनमें एक तबक़ा तो वह है जो इस्लाम-विरोधी दृष्टिकोणों को पूरे इत्मीनान के साथ स्वीकार कर चुका है और उन दृष्टिकोणों की हां-में-हां मिलाते हुए निःसंकोच इस्लाम को निरर्थक और बेमानी क़रार दे रहा है, जिसे इसी का दुख है कि उसके नाम, ख़ानदान और क़ौम से इस्लामी परम्पराएं प्रकट होती हैं। जो तबक़ा इस्लाम से इस हद तक विमुख हो वह मानो यह ऐलान कर रहा है कि इस्लाम इस योग्य है ही नहीं कि इसकी ओर बढ़ा जाए और मानवता की समस्याओं का समाधान इस्लाम के अन्दर नहीं बल्कि उसके बाहर है।

दूसरा तबक़ा उन लोगों का है, जिसका ईमान और यक़ीन तो ग़ैर-इस्लामी दृष्टिकोण पर है, परन्तु इस्लाम का नाम लेने वाली क़ौम में पैदा होने के कारण क़ौमी प्रभाव भी उसके अन्दर मौजूद है, इसलिए अनुसरण तो उन्हीं दृष्टिकोणों का करता है जो पूर्णतः इस्लाम-विरोधी हैं और साथ ही अपनी क़ौम से कटना भी नहीं चाहता। इस उद्देश्य के लिए वह इस्लाम को ज़िंदगी के उन पहलुओं में शेष रखे हुए है, जिनसे समय के दृष्टिकोण नहीं टकराते, परन्तु जिन पहलुओं में नका इस्लाम से टकराव हो वहां वह बिना किसी संकोच के उन दृष्टिकोणों को अपना लेता है।सही अर्थों में वह वर्ग चाहता है कि उसकी ज़िंदगी में इस्लाम और इस्लाम का इनकार, तौहीद (एकेश्वरवाद) और शिर्क (बहुदेववाद), आख़िरत का इनकार और आख़िरत की स्वीकृति साथ-साथ बाक़ी रहे। इस तबक़े के इस परस्पर विरोधी रवैए से इस्लाम इतना हास्यास्पद लगने लगता है की इसकी ओर कोई व्यक्ति आंख उठा कर देखना भी पसंद नहीं करेगा।

तीसरा तबक़ा पारंपरिक मुसलमानों का है जिसने इस्लाम पर बौद्धिक रूप से कभी चिन्तन नहीं किया और न वह इसकी योग्यता रखता है। यह तबक़ा

कुछ अस्पष्ट आस्थाओं और क़ौमी परंपराओं को अपने सीने से लगाए हुए है। वह जानता तक नहीं कि उसकी आस्थाओं पर किस-किस ओर से हमले हो रहे हैं और जिन चीज़ों को वह सर्वमान्य और अखंडनीय वास्तविकता समझे हुए है उन्हें किस-किस अंदाज़ से चुनौती दी जा रही है। अपनी आस्थाओं पर इस तबक़े का दृढ़ रहने का एक प्रमुख कारण यही है कि वह उन आपत्तियों से अनभिज्ञ है, जो उसकी आस्थाओं पर किए जा रहे हैं वरना उसके बहुत-से लोग अपनी जगह से हट जाएं। इस तबक़े के सम्बन्ध में यह विचार करना ही बेकार है कि वह समय की ग़लत विचारधाराओं के मुक़ाबले में इस्लाम की सर्वोच्चता प्रमाणित कर सकेगा। उसके लिए यही काफ़ी है कि वह हक़ (सत्य) पर जमा रहे।

चौथा तबक़ा उन लोगों का है जो समय के दृष्टिकोणों को सत्ताधारी दृष्टिकोणों के रूप में जानता है। उन दृष्टिकोणों के बिना वह तरक़्क़ी और उत्कर्ष की कल्पना भी नहीं कर सकता। यह तबक़ा इतिहास का अध्ययन करता है तो उसे उन्हीं दृष्टिकोणों एवं आस्थाओं की बुनियाद पर क़ौमें उन्नति करती अथवा पतनोन्मुख होती नज़र आती हैं, जो उसके काल में प्रचलित हैं। इस तबक़े ने हमेशा तात्कालीन रुझानों के तहत इस्लाम की व्याख्या एवं प्रतिनिधित्व किया, क्योंकि इसके बिना उसके निकट इस्लाम की सत्यता प्रमाणित हो ही नहीं सकती। लोकतंत्र का ज़ोर चला तो उसने कहा कि इस्लाम भी लोकतन्त्र का पक्षधर है और जब देखा कि लोकतन्त्र को सीमित करने का रुझान बढ़ रहा है, तो उसने कहना प्रारम्भ किया कि इस्लाम में भी सत्ता ख़लीफ़ा और इमाम ही के हाथ में होती है।

यह तबक़ा अपनी अच्छी नीयत के बाद भी इस्लाम को दूसरे दृष्टिकोणों से श्रेष्ठ एवं उच्चतर नहीं प्रमाणित कर सका। यही कारण है कि इस तबक़े के प्रयासों ने दुनिया को इस्लाम की ओर कभी आकर्षित नहीं किया, क्योंकि दुनिया ने यह समझा कि ज़िंदगी के सम्बन्ध में उसकी जो राय है, इस्लाम उससे अलग कोई राय नहीं रखता वह उसका समर्थक और सहायक है।

इस तबक़े ने एक ओर इस्लाम का परिचय एक स्थाई जीवन-दर्शन के रूप में होने नहीं दिया, दूसरी ओर इस्लाम को सामयिक रुझानों के अनुरूप करने की चिन्ता में बहुत-सी ग़ैर-इस्लामी परिकल्पनाओं को इस्लाम में साबित करना शुरू कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि इस्लाम की असल तस्वीर बिगड़ गई, क्योंकि जब कभी किसी दृष्टिकोण का तालमेल किसी ऐसे दृष्टिकोण से किया जाएगा जो उससे मेल नहीं खाता हो तो निश्चित रूप से उसकी सुन्दरता समाप्त हो जाएगी और वह हास्यास्पद लगने लगेगा। उदाहरणतः सामूहिक सम्पत्ति की परिकल्पना जीवन के उस नक़्शे में तो फिट हो जाती है जो कम्युनिज़्म पेश करता है। परन्तु यह अति हास्यास्पद बात होगी, यदि इस्लाम से भी इसका प्रमाण उपलब्ध किया जाने लगे, क्योंकि इस्लाम की सम्पूर्ण व्यवस्था ही व्यक्ति की सम्पत्ति और उसकी स्वतंत्रता पर आधारित है। इस प्रकार 'बर्थ कंट्रोल' की परिकल्पना उन दृष्टिकोणों के अनुकूल है जो आजीविका के मामले में अपने सीमित साधनों को सामने रख कर सोचते हैं, परन्तु जिन लोगों की आस्था यह है कि आजीविका का भण्डार अल्लाह के हाथ में है, जब वे बर्थ कंट्रोल का समर्थन करते हैं, तो मानो अपनी आस्था को ही झुठलाते हैं।

इसके बाद वह तबक़ा रह जाता है, जो इस्लाम को अन्तिम सत्य के रूप में मानता है और जिसका विश्वास है कि इस्लाम ही के द्वारा जीवन की सारी उलझनें हल हो सकती हैं, परन्तु चूंकि समय के प्रधान दृष्टिकोणों एवं विचारधाराओं ने संस्कृति एवं राजनीति, सभ्यता, सामाजिक जीवन तथा ज्ञान एवं कला के मैदान से इस्लाम को बेदख़ल कर दिया है। इसलिए इस तबक़े ने यह सोचना छोड़ दिया कि जीवन के उन पहलुओं के सम्बन्ध में इस्लाम के क्या निर्देश हैं ? वह राजनीति के क्या उसूल बताता है, सभ्यता एवं सामाजिक जीवन का क्या नक़्शा प्रस्तुत करता है, विभिन्न ज्ञान एवं कला के सिलसिले में क्या निर्देश देता है ? इस प्रकार इस तबक़े के निकट इस्लाम व्यवहारतः दिन-रात की आम ज़िंदगी से बाहर हो गया और एक ऐसे घेरे में घिर गया जिसमें कभी दो इंसानों के सम्बन्ध पर चर्चा नहीं होती। आज का इंसान जिन समस्याओं में

उलझा हुआ है यदि इस्लाम को उन समस्याओं के हल के रूप में प्रस्तुत न किया जाए तो उसके लिए इस्लाम में क्या दिलचस्पी हो सकती है ? वह इस्लाम को अपने दुख का हल कैसे मान सकता है ?

इस रवैए का सबसे बड़ा नुक़्सान उस तबक़े को पहुंचा कि वह "इज्तिहादी" योग्यता से वंचित हो गया, जिसके बिना समय की परिस्थितियों एवं समस्याओं की रहनुमाई मालूम नहीं की जा सकती । उसके अन्दर यह योग्यता नहीं रही कि इस्लाम का परिचय प्रत्येक काल के एकमात्र सच्चे मज़हब के रूप में करा सके और ग़लत दृष्टिकोणों के मुक़ाबले में इस्लाम के दृष्टिकोणों की सर्वोच्चता साबित करे ।

चौथा कारण

इन विभिन्न प्रकार की वैचारिक त्रुटियों के साथ सिवाए गिनती के कुछ लोगों के अधिकतर मुसलमानों की जीवन-शैली भी इस्लाम को समझने-समझाने के मार्ग में रुकावट रही है । एक लम्बी अवधि से इस्लाम के बजाए ग़ैर-इस्लाम को उन्होंने इस प्रकार अपना लिया है कि उनकी ज़िंदगी के किसी भी क्षेत्र से इस्लाम की सही व्याख्या नहीं होती । वे व्यापारी हुए तो ख़ुदा का इनकार करने वाले व्यापारियों की तरह अपने व्यापार में धोखा, झूठ एवं रिश्वत को अपनाया । विद्यार्थी हुए तो ऐसी विद्या के उत्थान एवं प्रसार में प्रयासरत रहे जो इस्लाम का इनकार करती हैं । धन-सम्पदा मिली तो उसे उन राहों में ख़र्च किया, जिनमें आख़िरत को भूला हुआ इंसान अपनी धन-दौलत ख़र्च करता है । सत्ताधारी हुए तो ज़ालिम एवं अत्याचारी बादशाहों के पद-चिन्हों पर चले । फिर कैसे दुनिया यह यक़ीन करती कि इनके पास ऐसे दृष्टिकोण हैं, जिनमें सारी इंसानियत के लिए मुक्ति का साधन है, वे ऐसे उसूल रखते हैं जो न्याय एवं इंसाफ़ की ज़मानत देने वाले हैं और उनके पास ऐसी शिक्षाएं हैं, जिनमें इंसान की भलाई और उनकी सफलता निहित है, उनके दुखों की दवा और परेशानियों का इलाज है ?

मुसलमानों के इस रवैए को देखकर दुनिया यह समझ सकती थी कि अब

उनका ईमान इस्लाम के श्रेष्ठ उसूल एवं दृष्टिकोणों पर नहीं रहा और वे उन्हें छोड़ चुके हैं, परन्तु दुनिया ने उनके सम्बन्ध में यह धारणा नहीं बनाई बल्कि वह यह सोचने पर विवश हुई कि इस्लाम मज़हब ही ऐसा है जो इंसानों के अन्दर ख़ूंख़ारी एवं दरिंदगी पैदा करता है, जो उसे दुनिया को चाहने वाला और विलासी बनाता है, जो धोखा एवं झूठ की शिक्षा देता है, क्योंकि मुसलमानों ने अपने सारे कुकर्मों के बावजूद एक ऐसे समुदाय के रूप में अपना परिचय कराया जो इस्लाम को मानता और इस्लाम से जुड़े रहने में ही अपनी मुक्ति समझता है ।

मुसलमानों की वैचारिक जड़ता एवं ठहराव के कारण इस्लाम को एक विशेष वर्ग की कुछ ऐसी आस्थाओं का संग्रह समझ लिया गया, जिनका जीवन और उसकी समस्याओं से कोई सम्बन्ध नहीं है, तो उनके ग़लत आचरण ने यह संकेत दिया कि इस्लाम कट्टरता, घृणा एवं शत्रुता का मज़हब है । इन दोनों परिकल्पनाओं को विभिन्न कारणों के तहत फैलाया और प्रसारित किया गया । अब वह इस प्रकार मस्तिष्क में रच-बस गए हैं कि जब तक उन्हें खुरच कर न निकाल दिया जाए, इस्लाम की सही परिकल्पना उनकी जगह नहीं ले सकती ।

पांचवां कारण

इस्लाम के विषय में इन दोनों प्रकार की परिकल्पनाओं के पैदा करने में मुसलमानों की वैचारिक एवं व्यावहारिक त्रुटियों के साथ दूसरे मज़हबों की शिक्षाओं और उनकी जीवन-शैली का भी बहुत दख़ल है ।

इस्लाम एक ऐसी वास्तविकता है जो प्रत्येक काल और प्रत्येक इलाक़े में विभिन्न नामों के साथ पेश की जाती रही है । इसलिए दुनिया का कोई इलाक़ा और कोई आबादी ऐसी नहीं है जहां इस्लाम किसी न किसी रूप में न पहुंचा हो परन्तु अधिकतर इंसानी आबादियों में एक लम्बी अवधि से इसकी पुनरावृत्ति नहीं हुई, इसलिए यह अपने असली रूप में शेष नहीं रह सका, यहां तक कि कुछ स्थानों पर इंसानी दर्शनों एवं विचारों ने इसे इतना विकृत कर दिया है कि

पहचानना तक कठिन हो गया है। दुनिया में प्रत्येक विचारधारा के वही व्याख्याता प्रामाणिक समझे जाते हैं, जिनका मन-मस्तिष्क इस विचारधारा को स्वीकार कर चुका हो, क्योंकि ऐसे ही लोगों के लिए यह सम्भव है कि ईमानदारी के साथ इसकी व्याख्या करें और असल विचारधारा को कोई आघात न पहुंचने दें। परन्तु ख़ुदा का मज़हब जो विभिन्न इंसानी तबक़ों के पास पहुंचा, उसके साथ यह ज़ुल्म हुआ कि उसमें प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी विचारधारा मिलाने का प्रयास किया। चाहे उस मज़हब के लिए वह निष्ठावान हो अथवा नहीं। परिणाम यह हुआ कि असल मज़हब के विपरीत विचार भी उसके एक भाग के रूप में उसमें घुस आए। वास्तविकता यह है कि इसमें ईश्वरीय शिक्षा का हिस्सा इतना कम रह गया है कि इसे ईश्वर की ओर से उतारा हुआ मज़हब कहना भी ज़्यादती है।

किसी भी व्यवस्था को बिगाड़ने और विकृत करने के बाद हम यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि वह अपने वांछित परिणाम पैदा कर सकेगी। अतएव यही हुआ कि जब इस्लाम की त्रुटिपूर्ण बल्कि विकृत शिक्षाओं को ज़ीवन के मैदान में लाया गया तो पहले ही क़दम पर महसूस हुआ कि वह जीवन की समस्याएं हल करने में असफल है।

उस समय ज़रूरत इस बात की थी कि मूल शिक्षाओं की ओर बढ़ा जाता और समय के बदलावों एवं परिस्थितियों के परिवर्तनों से असल मज़हब में जो त्रुटियाँ घुस आई हैं उन्हें समाप्त किया जाता, परन्तु अफ़सोस है कि हर गिरोह अपनी अपनी ग़लत और बिगड़ी हुई मान्यताओं पर जमा रहा और इन मान्यताओं के विरुद्ध जिस चीज़ को भी देखा उसके विरोध के लिए तैयार हो गया, मानो दुनिया की हर हक़ीक़त को उसकी मान्यताओं का साथ देना चाहिए वरना उसका अस्तित्व ही नहीं स्वीकार किया जाएगा, यद्यपि हज़ारों आंखें उसे देख रही हों और सैकड़ों तरीक़ों से उसे महसूस किया जा रहा हो।

विभिन्न मज़हबों का रवैया चूंकि ख़ुदा के नाम पर होता रहा, इसलिए दुनिया हर उस शिक्षा से बदगुमान हो गई जो ख़ुदा के नाम से दी जाती है और यह समझने लगी कि मज़हब कुछ कर्मकाण्डों एवं निरर्थक परिकल्पनाओं का नाम

है जिनका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए उनकी ओर आकर्षित होना भी मूर्खता समझा गया। हालांकि इस रवैए ने केवल उन कल्पित मान्यताओं एवं अनर्गल बातों का खंडन किया है, जिन्हें ईश्वरीय शिक्षा का नाम दे दिया गया है, वरना जहां तक ख़ुदा की ओर से उतारे गए आख़िरी मज़हब (इस्लाम) का सम्बन्ध है वह ज्यों का त्यों एक शब्द की कमी-बेशी के बिना शेष है। इसमें संदेह नहीं कि इसके नाम लेने वालों ने बहुत-सी ग़लतियां की और उस रास्ते से हटे रहे जिसकी ओर वह उन्हें बुलाता है, परन्तु इसके बावजूद उन्होंने इस मज़हब को उसी रूप में सुरक्षित रखा जिस रूप में वह उन्हें मिला था। आज यह मज़हब हमारे सामने है और अपने हक़ (सत्य) होने का एलान कर रहा है। अब तक कोई खोज एवं प्रयोग इस एलान को ग़लत नहीं साबित कर सका। □□□